वह दूसरे के दुःख से अत्यन्त दुखो होते थे। 'नीलदर्पण' उसी गुण का फल है। उन्होंने वङ्ग प्रजा के दुख को सम्पूर्ण रूप से सहृदय होकर अनुभव किया था। इसीसे 'नीलदर्पण' प्रणीत और प्रचारित हुआ। जो लोग दूसरे के दुःख से कातर होते हैं, दीनबन्धु उनमें अग्रगण्य थे। उनमें यह असाधारण गुण था, कि दुखी अपने दुख से जैसे कातर हुआ करता है, वे उसके सदृश अथवा उससे अधिक होते थे। इसका एक उदाहरण मैंने प्रत्यक्ष देखा है। एक दिन जसोर में वे मेरे यहां टिके थे। एक रात को उनके मित्र को कठिन पीडा हुई। उन्होंने दीनबन्धु को जगाकर पोड़ा का हाल कहा। सुनते ही दीनबन्धु मूर्छित होगये। जिन्होंने पीड़ा के सहायतार्थ दीनबन्धु को जगाया था, वे ही दीनबन्धु की सेवा करने लगे। उसी दिन मुझे निश्चय होगया, कि दीनबन्धु में और कुछ दूसरा गुण हो या नहीं, परन्तु उनका सा पर-दुख-दुखी और कोई नहीं होगा।

'नीलदर्पण' अङ्गरेज़ी में अनुवादित होकर इङ्गलैण्ड गया है। यह बात सबको विदित है कि लौङ्ग साहब सुप्रीम कोर्ट के विचार से उसके प्रचारार्थ दण्डनीय होकर कारावद्ध हुए थे। और सिटन कार साहब भी इसीलिए पदच्युत हुए थे।

इस ग्रन्थ के लिये लौङ्ग साहब कारावद्ध हुए, इससे, या इसमें और कोई गुण है इससे—इन दोनों में से चाहे जो कारण हो,—नीलदर्पण योरप की अनेक भाषाओं में अनुवादित हुआ था और पढ़ा गया था। यह सौभाग्य वङ्ग के और किसी ग्रन्थ को नहीं हुआ। ग्रन्थों का सौभाग्य हो, सो हो; परन्तु जो जो व्यक्ति इसमें लिप्त थे प्रायः सभी विपद्ग्रस्त हुए। इसका प्रचार कर लौङ्ग साहब कारावद्ध हुए; सिटन कार साहब पदच्युत हुए; और इसका अङ्गरेज़ी अनुवाद कर माइकेल मधुसूदन दत्त गुप्तरीति से तिरस्कृत हुए; और सुना गया है, कि अन्त में उनके जीवन-निर्वाह का एक मात्र उपाय सुप्रीमकोर्ट की नौकरी भी छोड़नी पड़ी। ग्रन्थकर्ता कारावद्ध अथवा पदच्युत तो नहीं हुए; परन्तु उनको बहुत विपद्ग्रस्त होना पड़ा; इसमें सन्देह नहीं।

एक बार रात को दीनबन्धु मेघना पार हो रहे थे; और किनारे से प्रायः दो कोस गये होंगे, कि अकस्मात् नाव डूबने लगी। माझी लोगों ने तैरना आरम्भ किया। दीनबन्धु तैरने में असमर्थ थे। वे नीलदर्पण को हाथ में लिये हुए डूबती हुई नाव की छत पर जा बैठे। इतने में एक तैरनेवाले का पैर भूमि में लगा; और वह पुकार उठा कि "भय नहीं है; जल थोड़ा है"। निकट ही सूखी भूमि थी। वहां नाव लगाई गई। और वह थोड़ी ही देर में टूट गई। दीनबन्धु तब भी उस की छत पर बैठे रहे। और वह भीगा नीलदर्पण उनके हाथ में था। दीनबन्धु को, उनके नौकारों को, और मल्लाहों को भी यही भावना थी कि अभी मेघना का भाटा बह रहा है, तुरन्त ज्वार आवैगा और सूखी भूमि को डुबाते हुए, इस टूटी नाव को भी वह बहा ले जायगा। उस समय प्राण बचने का क्या उपाय होगा? एक तो रात, दूसरे घोर अन्धकार, तीसरे वेगवती नदी के प्रवाह-स्रोत की भयानक ध्वनि, और बीच बीच में रात्रिचर पक्षियों का विकट चीत्कार,—अतएव दीनबन्धु जीवन-रक्षा का कोई उपाय न देख निराश होते थे। इतने में दूर से पतवार का शब्द सुनाई पड़ा। बार बार ज़ोर से पुकारने पर दूर के नौकारोहियों ने उत्तर दिया; और शीघ्र आकर साथियों समेत दीनबन्धु का उद्धार किया। ढाका से वे फिर नदिया आये। वस्तुतः वे अधिक काल नदिया ही में नियुक्त थे। कोई विशेष काम होने पर वे ढाका या कहीं अन्यत्र भेजे जाते थे।

ढाका से आने पर उन्होंने 'नवीन तपस्विनी' लिखा। यह ग्रन्थ कृष्णनगर के मुद्रालय में (जो कि दीनबन्धु आदि विद्वानों के उद्योग से स्थापित हुआ था, परन्तु स्थायी नहीं हुआ) मुद्रित हुआ था।

दीनबन्धु फिर नदिया से ढाका और वहां से उड़ीसा भेजे गये। वहाँ से वे फिर नदिया लौट

आये। वे कृष्णनगर में अधिक दिन तक थे, और उन्होंने वहाँ एक मकान भी मोल ले लिया था। १८६९ ई० के अन्त, अथवा १८७० ई० के आदि में, वे कृष्णनगर परित्याग कर इन्सपेक्टिङ्ग पोस्ट-मास्टरी पर बहाल हो कर कलकत्ते आये। पोस्ट-मास्टर-जनरल के सहायतार्थ इस पद का कार्य है। दीनबन्धु की सहायता से पोस्ट आफ़िस का काम कई वर्ष अत्युत्तम रीति से चला। सन् १८७१ ई० में वे लुसाई युद्ध के डाक का बन्दोबस्त करने को कछार गये, और इस भारी काम को अत्यन्त थोड़े काल में सम्पन्न कर लौट आये।

कलकत्ते में रहते समय उन्होंने रायबहादुर की उपाधि पाई। यह नहीं कह सकता हूँ कि यह उपाधि-प्राप्त मनुष्य अपनेको कितना कृतार्थ समझते हैं। परन्तु दीनबन्धु के भाग्य में पुरस्कार छोड़ और कुछ नहीं मिला। क्योंकि बङ्गाली हो कर भी वे प्रथम श्रेणी का वेतन पाते थे; परन्तु भाग्यवश इतना वेतन अनेक वज्र-मूर्ख भी पाया करते हैं और ऐसे मूर्ख पृथ्वी में सर्वत्र देखे जाते हैं। दीनबन्धु और सूर्यनारायण, यही दोनों आदमी, डाक विभाग के कर्मचारियों में सबसे दक्ष गिने जाते थे। सूर्यनारायण बाबू आसाम के कार्यों का भारी बोझ ले कर वहां रहते थे; और जहां जहां कुछ कठिन कार्य उपस्थित होता था, वहां दीनबन्धु भेजे जाते थे। इसी भाँति कार्यवश वे ढाका, उड़ीसा, उत्तर-पश्चिम, दार्जिलिङ्ग, कछार, आदि स्थानों में सर्वदा जाया करते थे। इसलिए वे बङ्गाल और उड़ीसा के सभी स्थानों में गये थे और विहार के भी अनेक स्थानों में उनका जाना हुआ था। डाक विभाग के परिश्रम का हिस्सा उनके भाग्य में था और पुरस्कार दूसरे के।

दीनबन्धु की कार्यनिपुणता और बहुदर्शिता ऐसी थी कि यदि वे बङ्गाली न होते तो मृत्यु के बहुत पहले ही वे पोस्ट-मास्टर-जनरल हो गये होते। और कालान्तर में वे डाइरेक्टर जनरल भी हो सकते। जैसे सौ बेर धोने से भी कोयले का कालापन नहीं दूर होता, और सहस्रों दोषों को ढाँकता है, वैसे ही हज़ार गुण रहने पर भी काले चमड़े का दोष नहीं जाता; उसमें सब गुण ढक जाते हैं।

पुरस्कार तो दूर रहा; दीनबन्धु पीछे से बहुत तङ्ग हुए। पोस्ट-मास्टर-जनरल और डाइरेक्टर जनरल में विवाद हुआ। दीनबन्धु का अपराध यही था कि वे पोस्ट-मास्टर-जनरल के सहायक थे। इससे वे दूसरे काम में भेजे गये। पहले वे कुछ दिन रेलवे के काम में नियुक्त हुए। बाद में वे हावड़ा डिवीज़न को भेजे गये। यही उनकी शेष बदली हुई।

अधिक परिश्रम के कारण दीनबन्धु बहुत दिनों से बहुमूत्र रोग से पीड़ित थे। कोई कोई कहते हैं, कि यह रोग प्रायः प्राणनाशी होता है। यह बात कहां तक ठीक है सो तो मैं नहीं जानता; परन्तु मैंने समझा था कि दीनबन्धु इस रोग से मुक्त हो जायँगे। रोगाक्रान्त होने के अनन्तर दीनबन्धु बहुत सावधानता और पथ्य से रहते थे। वे थोड़ी अफ़ीम भी खाने लगे थे; और कहते थे कि रोग कुछ कम है। इसके अनन्तर सन् १२८० साल के आश्विन महीने में वे अचानक विस्फोटक से पीड़ित हो शय्यागत हुए। उनकी मृत्युकहानी सब कोई जानते हैं; इसलिए उसको विस्तारपूर्वक लिखने की कोई आवश्यकता नहीं है। और मैं लिख भी नहीं सकता। मनुष्य की प्रार्थना सफल होने की यदि सम्भावना रहती, तो मैं ईश्वर से यही प्रार्थना करता, कि ऐसे सहृदय पुरुष का मृत्युवृत्तान्त किसीको लिखना न पड़े।

नवीन तपस्विनी के बाद 'बीए पागला बूड़ो' ग्रन्थ का प्रचार हुआ था। दीनबन्धु के ग्रन्थ विशेष करके प्रकृत घटनामूलक हैं। उन्होंने अनेक जीवित-व्यक्तियों के चरित का अनुकरण अपने प्रणीत चरित्रों में किया है। 'नीलदर्पण' की अनेक घटनायें यथार्थ हैं। 'नवीन तपस्विनी' में बड़ी रानी और छोटी रानी का वृत्तान्त सत्य है। 'सधवार एकादशी' के प्रायः सभी नायक नायिकायें जीवित व्यक्तियों की नक़ल हैं; और उसकी घटनाओं में भी कितने ही अंश सत्य हैं। 'जामाइ बारिक' में दो स्त्रियों की कथा सत्य है। 'बीए पागला बूड़ो' भी

जीवित व्यक्तियों को लक्ष्य करके लिखा गया था। प्रकृत घटना, जीवित व्यक्तियों के चरित्र, प्राचीन उपन्यास, अङ्गरेज़ी और प्रचलित कहानियों से विषय चुन चुन कर दीनबन्धु अपने अपूर्व मनोरञ्जक नाटकों की रचना किया करते थे। 'नवीन तपस्विनी' में इसका उत्तम दृष्टान्त है। राजा रमणीमोहन का थोड़ा सा वृत्तान्त सत्य है। 'हाँदलकुतकुत' की कथा प्राचीन उपन्यासमूलक है। 'जलधर' और 'जगदम्बा' का स्वभाव Merry Wives of Windsor से लिया गया है।

बङ्गाली पाठकों में अनेक नितान्त अशिक्षित हैं। वे लोग कहेंगे कि यदि दीनबन्धु के ग्रन्थों का मूल प्राचीन उपन्यास, अङ्गरेज़ी ग्रन्थ, और प्रचलित कहानियां ही हैं तो उनके ग्रन्थों की प्रशंसा ही क्या? और वे विचारेंगे कि मैं उनकी अप्रशंसा ही करता हूँ। ऐसे पाठकों को मैं समझाना नहीं चाहता हूँ। क्योंकि जल में रेखा होना असम्भव है। अङ्गरेज़ी कवि, शेक्सपीयर, का कोई नाटक प्रायः ऐसा नहीं है जो प्राचीन-ग्रन्थ-मूलक न हो। स्काट के अनेक उपन्यासों का मूल प्राचीन कथा या प्राचीन ग्रन्थ हैं। 'ईनियड,' 'इलियड' का अनुकरण है; और महाभारत को रामायण का अनुकरण कहें तो अयुक्त नहीं है। इनमें कौन ग्रन्थ अप्रशंसनीय है?

'सधवार एकादशी' 'बीए पागला बूढ़ो' के अनन्तर प्रकाशित हुआ था। परन्तु वह उससे पहले लिखा गया था। 'सधवार एकादशी' में जैसा असाधारण गुण है, वैसे ही अनेक असाधारण दोष भी हैं। वह प्रहसन विशुद्ध आत्मा की रुचि के अनुकूल नहीं है। इसीसे मैंने दीनबन्धु से अनुरोध किया था, कि विशेष परिवर्तन के बिना वह प्रचलित न होने पावै। कुछ दिनों तक यह अनुरोध रक्षा हुई भी थी।

'लीलावती' ग्रन्थ बहुत परिश्रम से लिखा गया था। दीनबन्धु के अन्य नाटकों की अपेक्षा इसमें दोष भी कम हैं। उस समय उनके कवित्व-सूर्य का मध्यान्हकाल कहा जा सकता है। इसके बाद तेज कुछ कुछ ह्रास होने लगा; और इसका उदाहरण भी पाया जाता है। स्काट ने पहले पद्य ग्रन्थ लिखना आरम्भ किया। पहले तीन ग्रन्थ बहुत उत्तम हुए भी। उसके 'लेडी आफ़ दी लेक' (Lady of the Lake) के बाद और कोई पद्य ग्रन्थ वैसा अच्छा नहीं हुआ। यह देखकर उसने पद्यरचना छोड़ दी; और गद्य लिखना आरम्भ किया। गद्य लेखकों में स्काट का जो नाम है वह उसके प्रथम रचित पन्द्रह सोलह उपन्यासों ही के कारण है। 'केनिलवर्थ' के बाद उसका और कोई उपन्यास, प्रथम श्रेणी पाने योग्य नहीं हुआ। मध्यान्ह की प्रखर धूप के सङ्ग, सन्ध्याकाल की मन्द ज्योति का जो सम्बन्ध है, Ivanhoe और Kennilworth आदि ग्रन्थों के सङ्ग स्काट के शेष दो काव्यों का भी वही सम्बन्ध है।

'लीलावती' के बाद दीनबन्धु की लेखनी ने कुछ काल तक विश्राम लिया। उसी विश्राम के बाद 'सुरधुनी काव्य', 'जमाइ बारिक' और 'द्वादश कविता' अत्यन्त शीघ्र शीघ्र प्रकाशित हुए। 'सुरधुनी काव्य' बहुत पहले लिखा गया था। वरन् इसका कुछ अंश 'बीए पागला बूढ़ो' के भी पहले लिखा गया था। मैंने अनुरोध किया था कि इसका भी प्रचार न हो। क्योंकि मेरे विचार में यह उनकी लेखनी के योग्य न हुआ था। और, बोध होता है, कि उनके अन्यान्य मित्रों ने भी ऐसा ही कहा होगा। इसीसे वह काव्य अनेक दिनों तक अप्रकाशित रहा।

दीनबन्धु की मृत्यु के थोड़े दिन पहले 'कमले कामिनी' प्रकाशित हुआ था। जब उसका प्रचार सर्वसाधारण में हुआ तब वह रोगशय्या पर पड़े थे।

दीनबन्धु के ग्रन्थों की यह समालोचना नहीं है। ग्रन्थों की समालोचना करना इस प्रबन्ध का उद्देश्य भी नहीं है, और उसका समय भी नहीं है। सब जानते हैं कि दीनबन्धु सुलेखक थे। इससे मुझे इस बात के कहने का प्रयोजन भी नहीं है।

वे अत्यन्त दक्ष राजकर्मचारी थे; इसका भी थोड़ा उल्लेख मैंने किया है। परन्तु, उनका एक परिचय देना अभी बाक़ी है। उनके सीधे सादे, कपटशून्य, स्नेहमय हृदय का परिचय मैं किस प्रकार दूं? बङ्गदेश में गुणवान व्यक्तियों का अभाव नहीं है। सुलेखकों का भी अत्यन्त अभाव नहीं है। परन्तु दीनबन्धु के अन्तःकरण के ऐसे अन्तःकरण का अभाव बङ्गदेश में क्या मनुष्यजाति में सदा रहेगा। जब इस संसार में क्षुद्र कीट से लेकर सम्राट पर्यन्त सबों का एक ही स्वभाव है;—अहङ्कार, अभिमान, क्रोध, स्वार्थपरता और कपट से सभी परिपूर्ण हैं;—तब ऐसे संसार में दीनबन्धु के से रत्न ही अमूल्य रत्न हैं।

बङ्गाल में ऐसे स्थान बहुत कम हैं जहां दीनबन्धु नहीं गये थे और वे जहां गये वहीं स्नेह संग्रह किया। जो उनके आने का हाल सुनता वह उनसे आलाप करने को उत्कण्ठित होता था और जो आलाप करता वही उनका मित्र हो जाता था। यह मैं नहीं कह सकता कि उनके समान सुरसिक पुरुष बङ्ग में हैं वा नहीं। परन्तु वे जिस सभा में बैठते थे उसके जीवन-स्वरूप हो जाते थे। उनकी रसीली मीठी बातों से सब कोई मुग्ध होते थे। श्रोतागण, अपने मन का दुःख भूल, उनके बताये हुए हास्यसागर में ग़ोता खाने लगते थे। यद्यपि उनके लिखे हुए हास्यरस के ग्रन्थ बङ्गभाषा में सब से उत्तम हैं, परन्तु उनकी असली हास्यरस को पटुता का शतांश भी परिचय उन ग्रन्थों से नहीं पाया जाता। हास्यरस पैदा करने में उनको जो पटुता थी उसका परिचय उनके कथोपकथन से मिलता था। अनेक समय में उनको मूर्तिमान हास्यरस कहना ही युक्त ज्ञान होता था। देखा गया है कि बहुत लोग 'और हँस नहीं सकते हैं' यह कह कर उनके पास से उठ गये हैं। हास्यरस में वे पूरे जादूगर थे। संसार में अनेक लोग निर्बोध परन्तु आत्माभिमानी हैं। ऐसे आदमियों के लिये दीनबन्धु साक्षात् यम थे। वे कदापि ऐसों के आत्माभिमान के विरुद्ध नहीं कहते, उलटे उस अग्नि को यथाशक्ति वे प्रज्वलित करते थे। और, जब निर्बोध आदमी उससे उन्मत्त हो उठता, तब वे उसका रङ्ग, रहस्य और चेष्टा देखा करते थे। ऐसा आदमी दीनबन्धु के हाथ में पड़ने से छुटकारा नहीं पाता था। पीछे से उनकी हास्य-रस-पटुता क्रमशः मन्द हो गई थी। प्रायः एक वर्ष से अधिक हुआ होगा कि एक दिन उनके किसी मित्र ने उनसे पूछा "दीनबन्धु! तुम्हारा हास्य-रस कहाँ गया? तुम्हारा रस सूखा जाता है। तुम और अब अधिक दिन नहीं बचोगे"। दीनबन्धु ने केवल यही उत्तर दिया "किसने कहा है"? परन्तु क्षणमात्र के लिये वे अन्यमनस्क हुए। एक दिन हम दोनों ने एक साथ रात बिताई थी। उनकी हास्य-रसोद्दीपिनी शक्ति सूखी है या नहीं, यह जानने के लिये उस रात को उन्होंने एक बार चेष्टा की थी। चेष्टा बहुत निष्फल नहीं हुई। ढाई पहर रात तक वे अनेक मित्रों को मुग्ध किये रहे। यह मैं नहीं जानता कि यही उन की शेष चेष्टा है। उसके बाद हम दोनों कभी रात एकत्र रहे; परन्तु उस रात की भांति उनको मैंने अत्यन्त आनन्दित नहीं पाया। यद्यपि उनकी यह असाधारण शक्ति क्रमशः कम होती जाती थी, तथापि उनकी व्यङ्गशक्ति बिलकुल तेजोहीन कभी नहीं हुई। मृत्युशय्या पर पड़े रहने पर भी उसने उनका सङ्ग त्याग नहीं किया। सभी जानते हैं कि उनकी मृत्यु का कारण फोड़ा है। एक फोड़ा पहले उनकी पीठ में हुआ। उसके कुछ अच्छा होते ही दूसरा उनकी कमर के नीचे निकल आया। उसके आराम होते ही एक और उनके बायें पांव में हुआ। जब उनके मित्र उनको देखने गये थे तब दीनबन्धु ने अत्यन्त दूरवर्ती मेघ की क्षीण विद्युत् की भांति हँस कर कहा "फोड़े ने अब मेरा पांव पकड़ा है"।

मनुष्य-मात्र को अहङ्कार और क्रोध होता है, परन्तु दीनबन्धु को नहीं था; उनकी कोई बात मुझसे छिपी नहीं थी। परन्तु मैंने उनको कभी क्रोधित होते हुए नहीं देखा। अनेक समय उनके

क्रोध का अभाव देख, मैंने उनको क्रोध करने के लिए कहा; परन्तु वे क्रोध नहीं कर सके। इस कारण वे अत्यन्त लज्जित भी हुए थे। क्रुद्ध होने का यत्न करके अन्त में विफल-मनोरथ होकर वे कहते कि "क्या करें, क्रोध आता ही नहीं"। उनके क्रोध का जो कुछ चिन्ह है, वह 'जामाई बारिक' के भोताराम भाट के ऊपर पाया जाता है। जैसे दीनबन्धु अनेक ग्रन्थों के प्रशंसक थे, वैसे ही अनेकों के वे निन्दक भी थे। संसार का यही नियम है कि जहां यश है वहीं निन्दा भी रहती है। पृथ्वी में जो यशस्वी हुए हैं, वही किसी किसी सम्प्रदाय के द्वारा निन्दित भी हुए हैं। इसके कई कारण हैं। प्रथम, दोषशून्य मनुष्य जन्मग्रहण ही नहीं करता। जो अधिक गुणी होते हैं उनका दोष, गुण की अपेक्षा अधिक व्यक्त होता है। एतावता मनुष्य उसके दोषों को दिखाने में प्रवृत्त होते हैं। दूसरा, गुण के साथ दोष का सदा विरोध है। इस लिए दोषी मनुष्य गुणवानों के शत्रु होते हैं। तीसरा, काम करने में कार्यगति से अनेक शत्रु हो जाते हैं। वे लोग अन्य प्रकार से शत्रुता साधन में अक्षम होकर निन्दा ही से अपने मन को तृप्त करते हैं। चौथा, अनेक लोग प्रशंसा के बदले स्वभावसिद्ध निन्दा करने और सुनने के शौक़ीन होते हैं। अतएव सामान्य व्यक्ति के बदले यशस्वियों की निन्दा वक्ता और श्रोताओं को सुखदायक होती है। पांचवाँ, ईर्षा मनुष्यों का स्वाभाविक धर्म है। अनेक लोग दूसरे के यश से अधिक दुःखित हो उनकी निन्दा करने में प्रवृत्त होते हैं। इन श्रेणियों के निन्दक सर्वत्र अनेक हैं; विशेष कर बङ्गदेश में।

दीनबन्धु स्वयं निर्विरोध, अहङ्कारविहीन, क्रोधशून्य थे, पर उपर्युक्त कारणों से उनके अनेक निन्दक हुए। पहली अवस्था में उनके कोई शत्रु नहीं था। इसका कारण यह था कि वे उस समय उतना यशस्वी नहीं हुए थे। जब 'नवीन तपस्विनी' का प्रचार हुआ, और उनका यश फैलने लगा, तभी निन्दकों ने अपना सिर उठाया। दीनबन्धु के ग्रन्थों में यथार्थ ही बहुत दोष हैं। इसी लिए यदि कोई उनकी निन्दा करते तो उसमें किसीको आपत्ति न होती। परन्तु उसके साथ ही उन ग्रन्थों के गुणांश का उन्होंने विचार नहीं किया। इस लिए उन लोगों को मैं निन्दक कहता हूं।

बहुत लोग दीनबन्धु के यहां नौकरी के लिए प्रार्थना करके विफल-मनोरथ हो क्रोध से समालोचकों के दल में जा मिलते थे। इस भांति के निन्दकों की निन्दा पर दीनबन्धु हँसते थे। निम्न श्रेणी के सम्वादपत्रों पर उनकी समुचित घृणा थी। परन्तु "कलकत्ता रिव्यु" ऐसे पत्रों में कोई निन्दा देखने से वे क्षुब्ध और विरक्त होते थे। "कलकत्ता रिव्यु" में "सुरधुनी" काव्य की जो समालोचना प्रकाशित हुई थी वह अन्याय-सङ्कुल नहीं थी। दीनबन्धु ने जो उसके लिये कोप किया था वही अन्याय था। भोताराम भाट दीनबन्धु के चरित्र का क्षुद्र कलङ्क है।

यह मुक्त कण्ठ से कहा जा सकता है कि दीनबन्धु ने कभी एक भी असत् कार्य नहीं किया। उनका स्वभाव विशेष तेजस्वी नहीं था। इसीसे वे सब समय, संसर्ग-दोष और मित्रों के अनुरोध से निन्दनीय कार्य का किञ्चित् संस्पर्श नहीं बचा सकते थे। परन्तु जो असत् है, जिसमें दूसरे की अनिष्ट सम्भावना है, और जो पाप है, ऐसे कार्य दीनबन्धु ने कभी नहीं किये। उन्होंने अनेक लोगों के उपकार किये हैं; और उनके अनुग्रह से अनेकों के पेट भरने का द्वार भी उन्मुक्त हुआ है। दीनबन्धु के भाग्य में एक दुर्लभ सुख मिला था। वे साध्वी स्नेहशालिनी पतिपरायणा पत्नी के स्वामी थे। दीनबन्धु का छोटे वय में विवाह नहीं हुआ था। हुगली के कुछ उत्तर वंशवाही गाँव में उनका विवाह हुआ था। दीनबन्धु गृहसुख से सदा सुखी थे। सब घरों में कभी न कभी दम्पति-कलह हुआ ही करता है, परन्तु इन दोनों में कभी एक दण्ड के लिए भी कथान्तर नहीं हुआ। एक बार झगड़ा

करने को दीनबन्धु दृढ़-प्रतिज्ञ हुए थे; परन्तु प्रतिज्ञा वृथा हुई। वे झगड़ा नहीं कर सके। झगड़ा करने के लिए जाकर उन्होंने या तो ख़ुद ही पहले हँस दिया, या उनकी सहधर्मिणी ने उनके कोप को उपहास द्वारा लोप कर दिया। निश्चित बात इस समय मुझे स्मरण नहीं है; दीनबन्धु आठ सन्तान छोड़ गये हैं।

दीनबन्धु अपने बन्धुवर्गों के प्रति बड़े स्नेहवान थे। हम यह कह सकते हैं कि उनकी ऐसी बन्धुप्रीति संसार का एक प्रधान सुख है। जिन्होंने वह खोया है उनका दुःख वर्णन नहीं किया जा सकता। कमलानन्दसिंह।

राजा भगवानदास।

जयपुर महाराज जयसिंह का बसाया हुआ है। उसके आबाद होने के पहले ढूंढ़ार की राजधानी आमेर या अम्बर में थी। यह नगर जयपुर के पास है। इस समय वह यद्यपि राजधानी नहीं है, तथापि बहुत सी पुरानी इमारतें उसमें अब भी देखने लायक़ हैं।

भारमल के पहले आमेर में जितने नरेश हो गये थे उनमें से एक ने भी दिल्ली नरेश से कोई सम्बन्ध नहीं रक्खा था। परन्तु बाबर के समय में भारमल देहली को गये और बादशाह की छाया में उन्होंने रहना स्वीकार किया। बाबर के अनन्तर जब हुमायूं को देहली का सिंहासन प्राप्त हुआ तब उसने प्रसन्न होकर भारमल को पञ्च-हज़ारी का मनसब दिया।

भारमल के अनन्तर आमेर का राजासन भगवानदास को मिला। इनका चित्र इस अङ्क के साथ पाठकों को भेंट दिया जाता है। भगवानदास का राजत्व-काल एक बात के लिए बहुत प्रसिद्ध है। वह बात देहली के शाही घराने से पहले पहल विवाह-सम्बन्ध करना है। भगवानदास और अकबर में गहरी मित्रता थी। अकबर की कुटिल नीति सभी पर विदित है। उसने विलक्षण चातुर्य्य से भगवानदास के आन्तरिक भावों में परिवर्तन उत्पन्न कर दिया। यह ठीक ठीक नहीं जाना गया कि किस लालच से, किस तर्कना-प्रणाली से, किस युक्ति से उसने भगवानदास को अपने वश में कर लिया। पर इसमें सन्देह नहीं कि अकबर ने अत्यन्त ही आश्चर्य्यकारक रीति से भगवानदास पर अपना प्रभाव जमाया। इसका फल यह हुआ कि भगवानदास महम्मद साहब के अनुयायियों के यहां कन्यादान करने पर राज़ी हो गये।

भगवानदास ने अपनी लड़की का विवाह अकबर के बेटे शाहज़ादा सलीम के साथ कर दिया। यह विवाह १५८६ ई० में हुआ। इसी राजपूत बेगम के पेट से शाहज़ादा ख़ुसरू की उत्पत्ति हुई।

बादशाही सेना के एक भाग का सेनापतित्व पाकर भगवानदास ने देहली-नरेश की, समय समय पर, बहुत सहायता की और कई युद्धों में बड़ी वीरता दिखलाई। कश्मीर पर जब अकबर ने चढ़ाई की तब सेनासञ्चालन का भार उन्हीं को दिया गया था। भगवानदास के चित्र की मौलिकता समझने के लिए उनके सम्बन्ध में इतनी बातों का जान लेना बस है।

अन्योक्ति-पञ्चक।

सानुवाद।

(भामिनी-विलास से)

तडाग।

[१]

आपेदिरेऽम्बरपथं परितः पतङ्गा
भृङ्गा रसालमुकुलानि समाश्रयन्ते।
सङ्कोचमञ्चति सरस्त्वयि दीनदीनो
मीनो नु हन्त कतमां गतिमभ्युपैतु॥

❋

सारे विहङ्ग नभमण्डल में गये हैं;
भौंरे रसाल-मुकुलों पर जा बसे हैं।

ए रे! तड़ाग तव क्षीण दशा हुए हा!
दीनातिदीन यह मीन अहो! करै क्या?

[२]

याते मय्यचिरान्निदाघजलनज्वालाशतैः शुष्कतां
गन्ता कम्प्रति पान्थसन्ततिरसैा सन्तापमालाकुला?
एवं यस्य निरन्तराधिपटलैर्नित्यं वपुः क्षीयते
धन्यं जीवनमस्य मार्गसरसो धिक् वारिधीनां जनुः॥

❋

सूखेंगा जब मैं निदाघतप की ज्वालावली से अभी,
जावेगी पथिकावली यह कहां? सन्ताप पाके तभी।
पीड़ा है जिसको निरन्तर यहीं; होता अतः क्षीण है;
सोहै धन्य तडाग, किन्तु धिक् धिक् वारीशका जन्म है!

माली।

[३]

तोयैरल्पैरपि करुणया भीमभानौ निदाघे,
मालाकार व्यरचि भवता या तरोरस्य पुष्टिः।
सा किं शक्या जनयितुमिह प्रावृषेण्येन वारां
धारासारानपि विकिरता विश्वतो वारिदेन॥

❋

देके थोड़ा जल, जब महाघोर लूवैं चली थीं,
माली तू ने इस विटप की पुष्टि जो अल्प की थी।
पाके वर्षा अब घन घनी वारिधारा गिराता
हा! हा! उस्की तदपि समता है नहीं किन्तु पाता॥

मेघ।

[४]

दवदहनजटालज्वालज्वालाहतानां
परिगलितलतानां म्लायतां भूरुहाणाम्।
अयि जलधर शैलश्रेणिश्रृङ्गेषु तोयं
वितरसि बहु कोऽयं श्रीमदस्तावकीनः॥

❋

प्रबल-अनल-ज्ञाल-ज्वाल-सन्ताप मारे
विकल सब लतायें शुष्क हैं वृक्ष सारे।
तदपि गिरिवरों के श्रृङ्ग तू सींचता है
श्रियमद यह तेरा रे! बता मेघ! क्या है?

[५]

भीष्मे भीष्मतरैः करैर्दिनकृता दग्धोपि यश्चातकः
त्वां ध्यायन् घनवासरान् कथमपि द्राघीयसो नीतवान्।
दैवाल्लोचनगोचरेण भवता तस्मिन्निदानीं यदि
स्वीचक्रे करकानिपातनकृपा तत् कम्प्रति ब्रूमहे।

❋

सूर्यज्वालवितप्त चातक हुआ जो ग्रीष्म की दाप से
तेरा ही रख ध्यान नित्य दिन वे काटे बड़े ताप से।
दैवाधीन त्वदीय दर्शन हुये इसको अहो आज हैं;
फेंकै जो अब वज्रटूक घन तू! हा हा तुझे क्या कहैं?

कन्हैयालाल पोद्दार।

रहिमन-विलास।

[पूर्व–प्रकाशित से आगे]

जो रहीम होती कहूँ प्रभु गति अपुने हाथ।
तोको धौं केहि मानतो आप बड़ाई साथ॥
आप बड़ाई साथ भूमि पै पग नहिँ धरतो।
मन भावती अनीति सदा ही जग मैं करतो॥
बिनु पाये अधिकार फूलि अभिमान करै सो।
ना जानै का करै नेकु अधिकार मिलै जो॥ ८१॥

जो रहीम मन हाथ है मनसा कहुँ किन जाहि।
जल भीतर छाया परी काया भीजति नाहिँ॥
काया भीजति नाहिँ रहै जल सोँ जो न्यारो।
मन राखै दृढ़ किये कहा दुःसंग बिचारो॥
दास डिगावैं नाहिँ सहै सब परै जोई तन।
करि न सकै कोउ कछू रहै बस जो रहीम मन॥८२॥

तेहि प्रमान चलिबो भलो जो सब दिन ठहराय।
उमड़ि चलै जल पार तें जो रहीम बढ़ि जाय॥
जो रहीम बढ़िजाय घटै सो निहचै जग यहि।
पूनो को ससि ग्रसै राहु तजि द्वैज चन्द्रमहि॥
चलै न ऐसी चाल लखत जग आँखि चढ़ै जेहि।
बुधजन चलैं जो चाल दास दृढ़ करि तू गहि तेहि८३

योँ रहीम सुख दुख सहत बड़े लोग सहसाँति ।
उवत चन्द्र जेहि भाँति सोँ ग्रथवत वाही भांति ॥
ग्रथवत वाही भाँति एक बिधि ग्रंतर नाहीं ।
यहै नोति जग चलो घटत ग्रै। बढ़त सदाहीं ॥
बाढ़े जैसे रहे घटे हू पैँ रहिए त्याेँ ।
धीरजवान सुजान सहैँ सुख दुःख सदा योँ ॥८४॥

माह मास लहि, देसुग्रा मीन परे थल ग्रैार ।
त्याेँ रहीम जग जानिए छुटे ग्रापनो ठैार ॥
छुटे ग्रापनो ठैार रहैं बस हाड़ चाम के ।
दाँत केस नख मनुज भ्रष्ट थल बिना काम के ॥
जब लैाँ थल पैँ रहै तबै लैाँ सब गुन गरिमा ।
कैाड़ी के भए तीन छुटे थल भागी महिमा ॥८५॥

कहि रहोम संपति सगे बनत बहुत बहु रीत ।
विपति कसैाटी जे कसे तेई साँचे मीत ॥
तेई साँचे मीत परे दुख टरैँ न सपने ।
ज्याेँ ज्याेँ लागै ग्राँच लगै रँग ग्रैारहु दपने ॥
ऐसे साँचे हितू जगत खोजे बिरले लहि ।
जिन्हें मिले ग्रस मीत तिन्हेँ जग धन्य धन्यकहि ॥८६॥

तब ही लग जीबो भलो दीबो परै न धोम ।
बिनु दीबो जीबो जगत हमहिँ न रुचै रहीम ॥
हमहिँ न रुचै रहीम दया बिनु जग मैं जीबो ।
यहै एक है सार बनै निज कर जो दीबो ॥
धन की सोभा दान दान सोँ जस फैलै जग ।
जब लैाँ पर उपकार बनै धन जनम तबहि लग ॥८७॥

रहिमन दानि दरिद्रतर तऊ जाँचिबे जोग ।
ज्याेँ सरितन सूखा परे कुग्राँ खनावत लोग ॥
कुग्राँ खनावत लोग लेइ गुन तेँ जल काढ़त ।
दत्तात्रय जड़ गुरू किये इक गुनहिँ निहारत ॥
नीच ऊँच को भेद दास करि दूर राखु मन ।
मिलै जहाँ गुन दान धाइ लीजै तहँ रहिमन ॥८८॥

रहिमन देखि बड़ेन कोँ लघु न दीजिए डार ।
जहाँ काम ग्रावै सुई कहा करै तरवार ॥
कहा करै तरवार ग्रँगरखा के सीवन मैं ।
मोती चुगे न जाहिँ ग्रन्न है जड़ जोयन मैं ॥
बैठि बड़न ढिग फूलि निरादर करहिं न लघु जन ।
जहँ ग्रावै जो काम तहाँ संचिय सो रहिमन ॥८९॥

बड़ माया को दोस यह जो कबहूँ घटि जाय ।
तो रहीम मरिबो भलो दुख सहि जिए बलाय ॥
दुख सहि जिए बलाय मान बिनु जीवन फीको ।
कियो राज तहँ लगत भीख माँगन नहिँ नीको ॥
रहे ग्रापुने ग्रास, हाथ तिन पैँ फैलाया ।
निभै एक रस सदा होय बरु नहिँ बड़ माया ॥९०॥

धनि रहीम गति मीन की जल बिछुरत जिय जाय ।
जियत कञ्ज तजि ग्रनत बसि कहा भैांर को भाय ॥
कहा भैांर को भाय लेइ मधु ग्रनत सिधारै ।
स्वारथ ही को प्रीति काम लै फिर न निहारै ॥
धिक धिक ते नर दास स्वार्थ हित मीत रहे बनि ।
प्रिय बिछोह जे प्रान तजैं ते प्रेमी जग धनि ॥९१॥

दादुर मोर किसान मन लग्यो रहै घन माहिँ ।
पै रहीम चातक रटनि सरवर कोँ कोउ नाहिँ ॥
सरवर कोँ कोउ नाहिँ श्यामसुन्दर रस ग्रोपीं ।
ज्ञान सुनैं नहिँ धर्म प्रेम मद माती गोपीं ॥
सुनि ऊधो की बात दुखित ह्वै बोलीं सब मुर ।
चातक चाहैं स्वाति नचत घन लहि कै दादुर ॥९२॥

ग्रमर बेलि बिनु मूल की प्रतिपालत है ताहि ।
रहिमन ऐसे प्रभुहिँ तजि खोजत फिरिए काहि ॥
खोजत फिरिए काहि नन्दनन्दन पिय ग्राछत ।
निजजन दुःख प्रहार रहत नित काछा काछत ।
जो सहाय ग्रसहाय सरन गहि ग्ररे मूढ़ किन ।
होइ ग्रमर किमि दास गहे दृढ़ ग्रमरबेलि बिन ॥९३

रहिमन ग्रत्ति न कीजिए गहि रहिए निज कानि ।
सहिजन ग्रति फूलै तऊ डार पात की हानि ॥
डार पात की हानि भए कहा सोभा पाई ।
ग्रत्ति कियो हरनाकुस छन में गयो बिलाई ॥
बलि कीनो ग्रति धर्म पठायो तुरत पतालन ।
करै राह को बात निभै जो सदा रहीमन ॥ ९४॥

सरवर के खग एक से बाढ़त प्रीति न धीम ।
पै मराल को मानसर एकै ठौर रहीम ॥
एकै ठौर रहीम अनत चित नाहिँ डिगावै ।
कमलन कों रवि एक और सों सुख नहिँ पावै ॥
सती नारि मन सदा रहै पति एक चरन तर ।
गोपिन एकहि श्याम कहो को इनके सरवर ॥९५॥

(असम्पूर्ण)

श्री राधाकृष्णदास ।

मालविका और अग्निमित्र ।

[महाकवि श्रीकालिदास के नाटक की आख्यायिका ।

[गत अङ्क के आगे]

[९]

जिस समय महाराज अग्निमित्र राजसभा सें उठ कर, और अपना नित्य कृत्य समाप्त करके, अपने विश्राम-भवन में पहुंचे, तब प्रतिहारी जयसेना ने, अभिवादन-पूर्वक निवेदन किया, कि बड़ी महारानीजी आज श्रीमान् के साथ उस लाल अशोक की पूजा करना चाहती हैं जो मालविका के चरण-स्पर्श से सिर से पैर तक कलियों से भर गया है ।

यह सुन महाराज ने कहा–" ठीक है। महारानी की बात हम सिर और आँखों से स्वीकार करते हैं; और अवश्य वहां चलकर महारानी के मान को बढ़ावेंगे " ।

यह सुन जयसेना वहां से चली गई; और महाराज एकान्त में मालविका के रूप का ध्यान करने लगे । पर उनका ध्यान बहुत देर तक नहीं लगा रह सका; क्योंकि गौतम ने आकर ध्यान भङ्ग कर दिया । उसने कहा–"लीजिए मित्र ! आपको बधाई है । कल जो आपको रानी इरावती ने मालविका के साथ देख लिया था, उसका समाचार ज्यों का त्यों उन्होंने बड़ी महारानी से जाकर कह सुनाया; और मेरी सारी चालाकी की बात कहने में भी कोई कसर न रक्खी । इसपर पहिले तो उन दोनों में खूब घुट घुट कर बातें हुईं; पर जब मधुकरिका मालिन ने अशोक के फूलने का समाचार जाकर उन्हें कह सुनाया, तब उन्होंने मालविका को आदर से अपने पास बुला लिया । मैं उसे महल में पहुँचाये ही चला आता हूं; वह वकुलावलिका के साथ, महारानी के भय से महल के एक कोने में छिप कर बैठी हुई थी ।

अब आज का यह समाचार है कि प्रमद वन में लाल अशोक के सामने ज़रदोज़ी का शामियाना खिंचा हुआ है; और अन्तःपुर की सब स्त्रियां तथा रानी इरावती के साथ महारानी धारिणी भी वहां विराज रही हैं । उनके पास दुलहिन की भाँति शृङ्गार किये हुये मालविका भी बैठी है । इन बातों से तो निश्चय होता है कि अब मालविका के विरह में आपको तड़पना नहीं पड़ेगा । महारानी आज अवश्य मालविका को आपके हाथ में सादर समर्पण कर देंगी " ।

यह एक ऐसा आनन्ददायक समाचार था जिसे सुन विरही महाराज अग्निमित्र के आनन्द की सीमा न रही; और वे चटपट अपने को वस्त्राभूषणों से अलङ्कृत कर गौतम के साथ प्रमदवन की ओर चले। साथ में मार्ग दिखलाने के लिए प्रतिहारी जयसेना भी हो ली । प्रमदवन में पहुँचते ही महारानी धारिणी और रानी इरावती ने उठकर महाराज की अगवानी की; और बड़े आदर से, उस जड़ाऊ चौकी पर लाके उन्हें बैठाया, जो उनके लिए पहिले ही से उस अशोक वृक्ष की छाया के तले रक्खी थी । महाराज, योगिनीजी को प्रणाम करके चौकी पर बैठ गये; पर कई बार कनखियों से मालविका की ओर देखे बिना उनसे न रहा गया । उनके इस आचरण को मालविका के अतिरिक्त क़रीब क़रीब सभी ने लख लिया; क्योंकि लज्जा से सिर झुकाये हुए बैठी रहने के कारण, मालविका ने महाराज की ओर देखने का साहस न किया । उस समय महाराज अग्निमित्र और मालविका की वही दशा थी, जो चकवा और चकई की होती है, कि पास

रहने पर भी एक दूसरे से मिलने का संयोग नहीं गठता ग्रैार वियोग की पीर सहते हैं।

तदनन्तर महारानी ग्रैार रानी इरावती ने मुसकुरा कर महाराज से अपनी उन काररवाइयों के लिए क्षमा माँगी, जो उन दोनों ने, समय समय पर, मालविका के कारण महाराज के साथ की थीं। यद्यपि यह एक ऐसा परिहासमय दृश्य था, कि उसपर सब कोई हँस पड़े; पर महाराज ने कुछ शर्मिन्दा होकर अपना सिर झुका लिया। किन्तु मालविका ग्रैार महाराज के मन में आज की हरकत से निश्चय हो गया कि अब परस्पर संयोग ग्रैार मिलाप होने में कोई सन्देह नहीं है।

इतने में मैाद्गल्य ने आकर महाराज से विनय पूर्वक कहा कि-"मन्त्री महाशय ने निवेदन किया है कि वीरसेन ने विदर्भ देश के अहङ्कारी राजा को जड़ से उखाड़ कर फेंक दिया; ग्रैार कुमार माधवसेन को उसकी कैद से छुटकारा मिला; तथा विदर्भ देश से दो कलावती स्त्रियां आई हैं जो श्रीमान् के दर्शन की अभिलाषा रखती हैं। इसपर महाराज ने उनको वहीं लाने के लिए आज्ञा दी; ग्रैार थोड़ी ही देर में मैाद्गल्य ने उन दोनों को वहां ला उपस्थित किया। उनमें एक का नाम मदनिका ग्रैार दूसरी का ज्योत्स्निका था। उन दोनों ने आकर महाराज, महारानी आदि लोगों को यथोचित प्रणाम किया। पर जब उन दोनों की दृष्टि मालविका ग्रैार योगिनी पर पड़ी तब वे एकदम चिहुंक उठीं ग्रैार एकाएक बोल पड़ीं कि, "ऐं! यह हम क्या देख रहीं हैं? अरे यह तो हमारी राजकुमारीजी, तथा यह कैाशिकी हैं"।

इन दोनों की ये बातें सुन मालविका ग्रैार योगिनी ने सिर उठा कर मदनिका ग्रैार ज्योत्स्निका की ग्रोर देखा; ग्रैार चार नज़र होते ही चारों की चारों उसासें लेले कर आँसू बहाने लगीं। यह एक ऐसा रहस्यमय रूपक था कि जिसने सबका ध्यान अपनी ग्रोर खींच लिया; ग्रैार महाराज ने घबराकर योगिनी से पूछा-"यह क्या बात है? ग्रैार यह कैसा रहस्य है? (मालविका की ग्रोर अङ्गुली दिखा कर) ये कहां की राजकुमारी हैं; ग्रैार आप कैान हैं? कृपा कर जल्द कहिए ग्रैार हमारी उत्कण्ठा को दूर कीजिए।"

यह सुन कर योगिनी ने एक ठण्ढी साँस ली ग्रैार आँसू पोंछती हुई महाराज की ग्रोर देख कर कहा-"सुनिए, महाराज! विदर्भ देश के राजा को जीतकर जिन कुमार माधवसेन को आपने बन्धन से छुड़ाया है, मालविका उन्हीं की छोटी बहिन है। जब कुमार माधवसेन विदर्भराज के हाथ पकड़ गये तब मन्त्री सुमतिजी चुप चाप मालविका ग्रैार मुझे अपने साथ ले यात्रा करते चले। कुमार माधवसेन के मन्त्री सुमतिजी मेरे बड़े भाई थे। जब (मालविका की ग्रोर इशारा करके) इनके भाई की वह दशा हुई तब आपके साथ इनका सम्बन्ध करने के लिए इन्हें साथ लेकर वे आपकी राजधानी की ग्रोर चले। कई दिनों तक तो हम लोग निर्विघ्न चलते रहे; पर एक दिन एक सूनसान जङ्गल में हम लोगों का डेरा पड़ा। वहां कई हथियारबन्द डाकुग्रों ने आकर हम लोगों को घेर लिया। पहिले तो मेरे भाई सुमतिजी ने उन डाकुग्रों के साथ घोर युद्ध किया; ग्रैार बहुतेरे डाकुग्रों को मारा; पर वे अकेले कहां तक क्या कर सकते थे? आख़िर वे मारे गये; ग्रैार हम लोगों को बिलकुल अनाथ कर गये। उस समय जो कुछ दुःख हम लोगों को हुआ उसका कहना हमारे सामर्थ्य से बाहर है। निश्चय था, कि उनके मारे जाने पर हम लोग डाकुग्रों के हाथ फँस जातीं; पर, उसी समय, कुछ थोड़े से सिपाहियों को साथ लिए हुए वीरसेन वहां पहुँच गये ग्रैार शेष डाकुग्रों को मार (मालविका की ग्रोर बतला कर) इन्हें ले वहां से चल दिये। जिस समय सुमतिजी मारे गये थे, मैं बेसुध हो गिर पड़ी थी; पर जब मैं होश में आई तब मैंने मालविका को न पाया; ग्रैार लोगों से सुना कि इन्हें किसी दूसरे गरोह के लोग उठा ले

गये। आख़िर मैं सुमतिजी के सत्कार करके आपके यहां जोगिन का भेष धर कर पहुँची; और तब मैंने इनको यहां देखकर जाना कि डाँकुओं के हाथ से इन्हें छुड़ा कर यहां तक पहुंचानेवाले आपके सेनापति वीर वीरसेन ही हैं"।

"वीरसेन ने इनका असली हाल कुछ भी न बतलाकर, जिसे वे अवश्य जानते थे, महारानी धारिणी के पास इन्हें भेज दिया; और मैंने भी इन (मालविका) से मिल कुछ दिन तक अज्ञात रहने की इच्छा से इस रहस्य को किसीपर प्रगट नहीं किया"।

इतना सुन महारानी धारिणी ने योगिनी से कहा-"माता! तुमने यह अच्छा नहीं किया, जो मालविका के असली भेद को मुझ पर प्रगट न किया। हाय! यदि मैं जानती कि यह दुक्खिनी राज कुमारी ही है, तो मैं इसे अपनी चेरी क्यों बनाती; और इतना क्लेश क्यों देती?"

योगिनी ने कहा-"महारानी! आप इसमें कुछ खेद न करें; क्योंकि मालविका के रहस्य के, उस समय मैंने इस लिए प्रगट नहीं किया कि एक समय, इनके पिता के पास एक सिद्ध आया था, जिसने मालविका का हाथ देखकर बतलाया था, कि 'यह लड़की वर्ष दिन तक किसी की दासी रहेगी'। इस बात की सुध रहने से मैंने इस रहस्य को प्रगट नहीं किया, और समझ लिया, कि आप की सेवा में इनके कर्म भोग के दिन कट जाँयगे"।

इतने ही में मैादूगल्यने आकर महाराज से निवेदन किया कि "श्रीमान् के आज्ञानुसार विदर्भ के विषय में जो होना था सो हो चुका। अब आगे जो श्रीमान् आज्ञा दें सो किया जाय"?

इस पर महाराज ने कहा-"मन्त्री जी से हमारी ओर से कहो कि यज्ञसेन और माधवसेन, इन दोनों को विदर्भ का आधा आधा राज बाँट दें; और इस विषय का आज्ञापत्र अभी सेनापति वीर सेन के नाम भेज दें"।

महाराज की इस आज्ञा को सुन कर सब लोग बहुत ही प्रसन्न हुए; विशेष कर मालविका।

यह सुनकर कञ्चुकी तो बाहर चला गया; और महारानी धारिणी ने बड़े स्नेह से मालविका को गले लगाकर अपने किये हुए अनादर की क्षमा माँगी। जिस पर मालविका ने महारानी के पैरों पर अपना सिर रख दिया; और इस दृश्य से जितने लोग वहां उपस्थित थे सबका जी भर आया।

बाद इसके कञ्चुकी फिर वहां पहुँचा; और महाराज से उसने निवेदन किया कि-"श्रीमान् के आज्ञानुसार सेनापति वीरसेन के नाम पत्र लिख कर भेज दिया गया; और सेनापति पुष्पमित्र जी के पास से भेंट के सहित यह पत्र आया है। इसे, श्रीमान् अवलोकन करें"।

यह सुनकर बड़े आदर से महाराज ने उस पत्र को हाथ में लिया और श्रीमान् ने फिर उसे कञ्चुकी के हाथ में देकर पढ़ने को आज्ञा दी। वह पढ़ने लगा। उस पत्र में यह लिखा था—

"स्वस्तिश्री चिरञ्जीवि अग्निमित्र की यज्ञभूमि से सेनापति पुष्पमित्र का बड़े स्नेह से यथा योग्य पहुँचे। आगे समाचार यह है, कि राजसूययज्ञ के लिए वर्ष दिन के नियमानुकूल जो घोड़ा हमने छोड़ा था, उसको रखवाली के लिए, सैा राजकुमारों के साथ, कुमार वसुमित्र के भेजा था। सब स्थानों से घुमाते हुए जब वह घोड़ा सिन्धुदेश में पहुंचा तब यवनों ने आकर उसे छीनना चाहा। इस पर ख़ूब गहरी लड़ाई हुई; और बड़ी वीरता से कुमार वसुमित्र ने उन आततायी यवनों को मार घोड़े की रक्षा की। अब हम यज्ञारम्भ किया चाहते हैं, इस लिए, पुराना विरोध भुलाकर बहुओं के साथ, आप अवश्य शीघ्र चले आइए; और यज्ञ भूमि को अलङ्कृत कीजिए"।

अपने प्रिय पुत्र कुमार वसुमित्र की निरोगता का हाल सुनकर महारानी धारिणी और महाराज आदि सभी लोग अत्यन्त आनन्दित हुए; और इस मङ्गल समाचार के सुनानेवाले कञ्चुकी को वस्त्राभूषण से उन्होंने लाद दिया। फिर महाराज ने कञ्चुकी से कहा कि-"तुम जाकर मन्त्री जी से

कहो कि यज्ञसेन के साले सहित सब बन्दियों को छोड़ दें"।

यह सुनकर मौद्गल्य बाहर चला गया। तब महारानी ने महाराज की ओर देख मुसकुरा कर मालविका से कहा—"राजकुमारी! मैंने तुम से यह प्रतिज्ञा की थी यदि तुम्हारे चरण छुलाने से अशोक फूल उठेगा तो जो कुछ तुम माँगोगी सो मैं तुम्हें दूंगी। सो अशोक तो फूल उठा। अब तुम मुझ से क्या चाहती हो, कहो? और सङ्कोच न करो; तथा मेरे सिर से इस ऋण के बोझ को दूर करो। महारानी के इस प्रकार कहने का यह एक ऐसा ढँग था, कि जिसे सुन मालविका लज्जा के बोझ से दब सी गई; और महाराज ने भी अपना सिर झुका लिया। तब गौतम ने आगे बढ़कर कहा—"महारानी जी! यदि मालविका की तरफ़ से मैं कुछ आप से प्रार्थना करूं; तो आप उसे क़बूल करेंगी"?

यह भी एक ऐसी उक्ति थी कि जिसने सब लोगों के चेहरे पर प्रसन्नता झलकादी; और महारानी धारिणी ने प्रसन्न होकर कहा—"नहीं इस विषय में, इस समय, मैं तुम्हारी वकालत मञ्जूर नहीं करूंगी; और सिवाय मालविका के और किसी की बात भी मैं सुनना नहीं चाहती"। यों कहकर उन्होंने महाराज की तरफ़, हँसकर देखा और कहा—"हाँ, यदि महाराज मालविका की तरफ़ से कुछ कहें तो बेशक उसकी सुनाई हो सकती है"। इस पर इस परिहास, एवं आमोद पूर्ण रानी के कथन, को सुन महाराज ने कहा—"प्रिये। क्यों मुझे व्यर्थ लज्जित करती हो"?

यह सुन रानी इरावती ने कहा—"वाह, महाराज! आज तो आप एक दम लाज की पोटली ही बाँधे फिरते हैं"!

गौतम ने कहा—"क्योंकि निर्लज्जता तो आज मेरे पाले पड़ी है"।

निदान इन हास परिहासों के अनन्तर महारानी धारिणी ने, इरावती और योगिनी की सम्मति से, मालविका और महाराज अग्निमित्र की गांठ जोड़ दी। तब सुहागिनें सुहाग गाने लगीं। चारों ओर मङ्गलगान आरम्भ हो गया। अन्तःपुर में देव पूजन और शंखध्वनि होने लगी। द्वार पर नौबत झरने लगी। ऐसे अवसर पर भला हमारे गौतम जी महाराज कब चूकनेवाले थे। जब इन्हें कोई वस्तु न मिली तब इन्होंने अपने कटिपश्चाद्भाग ही पर ताल देकर अपना विचित्र तांडव आरम्भ कर दिया।

पुरोहित जी बुलाये गये, और यथा शास्त्र शुभ मुहूर्त में, महारानी धारिणी ने बड़े हुलास के साथ मालविका का विवाह महाराज अग्निमित्र से कर दिया।

पाठक वस्तुतः यह एक ऐसा कठिन कार्य है कि जिसके इतने गम्भीर बोझ को महारानी धारिणी जैसी उन्नत हृदया एवं पति की अनुकूला नारी ही वहन कर सकती हैं।

निदान भर पेट मोदक भोग लगा कर गौतम खूब ही मुदित हुए। और महाराज ने मालविका के साथ जो कुछ सुख उठाया उसका अनुभव हम भुक्त भोगी पाठकों हीं के विचार पर छोड़ कर इस आख्यायिका को समाप्त करते हैं। अन्त में हम इतना और कह देना उचित समझते हैं, कि विदर्भ नगर से मदनिका और ज्योत्स्निका नाम की जो दो कलावती आई थीं, उनमें से एक को महारानी धारिणी ने और दूसरी को मालविका ने चेरी बनाया। इति।

जगन्नाथप्रसाद तिवारी।

ईश्वर।

नास्तिकास्तिक-सम्वाद

[पूर्व प्रकाशित से आगे]

[२]

नास्तिक—यह कहने से काम न चलैगा कि यह जगत् बनाया गया है; इस लिए इसका बनानेवाला होना हीं चाहिए।

आस्तिक—क्यों नहीं? आपही तो फ़रमाते हैं कि हर आदमी को "सच्चे दिल से" अपने ख़याल ज़ाहिर करने का अख़तियार है। अगर किसी का ख़याल ऐसा ही हो तो?

नास्तिक—इसका सबूत चाहिए कि यह दुनियां रची गई है, निर्म्माण की गई है, बनाई गई है।

आस्तिक—ज़रूर चाहिए। वेदान्त आदि जितने दर्शन शास्त्रों में इस विषय का विचार किया गया है उन सब में इस बात के एक नहीं अनेक सबूत हैं। आप को तो तार्किक होने का शायद बहुत बड़ा घमण्ड है; फिर आपही कहिए कि सबूतों पर स्याही फेर देने ही से क्या उनका खण्डन हो सकता है? आपका फ़र्ज़ था कि आप उन सबूतों को जाँच करते और जाँच करके उनको ग़लत साबित करते। यह तो आप से हुआ नहीं; पर यह आपने छूटते ही कह दिया कि "सबूत चाहिए"। जैसे, आज तक, इस बात का कोई सबूत दिया हो न गया हो। अगर वे सबूत आप को मालूम थे तो आपको लाज़िम था कि "सच्चे दिल" से आप उनका खण्डन करते। अगर न मालूम थे तो हम से, या और किसी से, पूछ कर उनको जान लेने में क्या कोई लज्जा की बात थी? जान कर, तब आपको जिव्हा-चापल्य करना था।

तत्ववेत्ताओं ने सैकड़ों जगह पर लिखा है कि यह संसारचक्र जिस नियम और जिस क्रम से चल रहा है उसको देखकर यह बात दृढ़ता से कही जा सकती है कि इसका बनानेवाला कोई ज़रूर है। इसका आपने जवाब ही नहीं दिया। तर्कशास्त्र के नियमानुसार ये सबूत तब तक अचल हैं जब तक आप इनको ग़लत नहीं सिद्ध करते। यह आप तर्क द्वारा कीजिए; व्यर्थ के बकवाद और प्रलाप द्वारा नहीं।

नास्तिक—यह कहना ठीक नहीं कि, सृष्टि क्रमानुकूल चल रही है, इस लिए इसका स्रष्टा अनादि और अविनाशी होना ही चाहिए।

आस्तिक—ज़रूर; इस तरह सिर्फ़ कह देने ही से काम नहीं चलैगा। सबूत देना पड़ैगा। जैसे आप बे सबूत के सैकड़ों बातें कहते चले जाते हैं वैसे दूसरे नहीं कहते। दर्शन शास्त्र के पारगामी पण्डितों ने, अनेक बार, इस बात की पुष्टि में प्रमाण दिये हैं। उनकी दलीलें ऐसी मज़बूत हैं कि जब तक आप उनका सप्रमाण खण्डन नहीं करते तब तक स्रष्टा का अनादित्व और अविनाशित्व एक तिल भर भी कम नहीं होता।

नास्तिक—यह उक्ति, कि सृष्टि की उत्पत्ति अर्थात् उसका सबसे पहला उद्भव होना ही चाहिए; पर स्रष्टा के लिए यह बात आवश्यक नहीं; पहले दरजे की मूर्खता है।

आस्तिक—हमारा ख़याल बिलकुल इसका उलटा है। हम समझते हैं कि ऐसी उक्ति तर्कविद्या के सबसे ऊंचे दरजे का प्रकाशमान नमूना है। लेकिन, जान पड़ता है, कि जिस बात के खण्डन करने की हुज़ूर कोशिश कर रहे हैं उसके लगाव ही को आप भूल गये हैं। ठीक रास्ते पर आ जाइए। अपने तर्क की तलवार को ज़रा तेज़ कर लीजिए। न हमने और न किसी दार्शनिक ने आज तक यह कहा है कि यह सृष्टि किसी समय आदि अवस्था में थी। जो कुछ कहा है वह यह है कि इसका नक़शा अर्थात् 'प्लैन' या 'डिज़ाइन' परमेश्वर के मन में अनादि काल से वर्तमान था। यह सारा जगत् जगदीश्वर को अनादि भावना का साकार रूप है। ईश्वर के सर्जन कर्म्म द्वारा, यथा समय, इसने विकाश पाया है। हमारी राय में, यह कहना, कि इस संसार का नक़शा किसी समय पहले पहल बनाया गया था, मनुष्य का बहुत बड़ा पागलपन है—पागलपन न सही तो मूर्खता ज़रूर है। जब नक़शा अनादि है तब नक़शानवीस—ड्राफ्ट्स मैन के अनादि होने में क्या सन्देह? कोई नहीं कह सकता कि इस सृष्टि का नक़शा कब तैयार हुआ; अत एव यह भी कोई नहीं कह सकता कि इसका बनानेवाला कब पैदा हुआ। जिनकी शक्ति

महदूद है, अर्थात् जिनकी शक्ति की सीमा निर्दिष्ट है, उनके कृत्यों के आरम्भ का पता लग सकता है; क्योंकि ऐसे कृत्यों में कर्ता की प्राकृतिक विद्या, बुद्धि और शक्ति की निर्दिष्ट मात्रा अनुस्यूत रहती है। परन्तु हमको ईश्वर की निःसीम शक्तिमत्ता की तुलना मनुष्य की निःसीम अशक्तता से न करना चाहिए। आप ऐसी ही तुलना करना चाहते हैं। जान पड़ता है, इस प्रकार की ग़लती से बचना आपके लिए ग़ैर-मुमकिन सा है।

नास्तिक—जब हम किसी घड़ी को देखते हैं तब यह कहते हैं कि—"देखो, यह कैसी अजूबा चीज़ है; इसको ज़रूर किसीने बनाया होगा"।

आस्तिक—मीमांसकाचार्य्यजी, माफ़ कीजिए। हम ऐसा नहीं कहते। न्यायमुक्तावली, गादाधरी और जागदीशी आदि को जाने दीजिए, जिसने सिर्फ़ तर्क-संग्रह ही पढ़ा है वह भी ऐसा नहीं कहैगा। वह यह हरगिज़ हरगिज़ न कहैगा कि यह घड़ी अजूबा है, इस लिए इसका बनानेवाला कोई ज़ुरूर है। वह कहैगा कि इसमें बनाये जाने के चिन्ह हैं; अथवा इसके बनाये जाने का सबूत है। इस लिए इसको किसीने ज़रूर बनाया है। घड़ी का अजूबापन सिर्फ़ इस बात को ज़ाहिर करता है कि उसे किसी अच्छे कारीगर ने बनाया है। बस।

नास्तिक—जब हम किसी घड़ीसाज़ को देखते हैं तब यह कहते हैं कि—"देखो, आदमी कैसी विलक्षण और आश्चर्य्यमय चीज़ है; इसका बनानेवाला कोई ज़रूर होगा"।

आस्तिक—जी हां; लेकिन इस लिए नहीं कि वह विलक्षण और आश्चर्य्यमय है। किन्तु इस लिए कि वह "है" और "परिमित ज्ञानवान्" है। यदि आप दार्शनिक पण्डितों की तरफ़ से कहीं विकालत करने जाते तो आप उनके मुक़द्मे का सत्यानाश ही कर डालते।

नास्तिक—जब कोई जान लेता है कि ईश्वर है तब यह कहता है कि—"वह इतना अजीब है कि हरगिज़ किसीका वह बनाया हुआ न होगा"।

आस्तिक—"कोई" ऐसा कहता होगा; हम नहीं कहते। हमारी नज़र में ईश्वर स्वयम्भूत, स्वतोविद्यमान, अनादि और अविनाशी है। इस लिए हम कहते हैं कि उसका बनानेवाला कोई हरगिज़ न होगा। यह तत्ववेत्ताओं की तर्कना-प्रणाली है। आपकी निरर्थक और प्रलाप-पूर्ण प्रणाली से यह प्रणाली सर्वथा भिन्न है।

नास्तिक—हम एक बात आपसे पूंछते हैं। क्या आप इसे नहीं क़बूल करते कि जितनी अजूबा चीज़ें हैं सब बनाई गई हैं?

आस्तिक—"अजूबा" के लफ़ज़ को आप बार बार ऐसे प्रयोग करते हैं जैसे फागुन के महीने में लड़के बेताल सुर के डफ़ली का प्रयोग करते हैं। आपके इस लफ़ज़ को सुनकर उतनी ही घृणा होती है जितनी उस कर्णकटु बाजे की आवाज़ से होती है। जितने पदार्थ हैं सब बनाये गये हैं—यह सिद्धान्त इस भित्ति पर नहीं स्थिर किया गया कि वे पदार्थ अजूबा हैं; किन्तु इस भित्ति पर कि वे अस्तित्व में हैं। उनका अस्तित्व उनके बनाये जाने का प्रमाण है। बालू की एक कणा, जो वायु से उड़ी उड़ी फिरती है, स्रष्टा के अस्तित्व का उतना ही सबल प्रमाण है जितना कि यह विस्तृत और अचरज से भरा हुआ सारा संसार। अतएव किसी चीज़ का अजूबापन उसके बनाये जाने का ख़याल चित्त में नहीं पैदा करता; किन्तु उसका अस्तित्व-उसका विद्यमानत्व-उसे पैदा करता है। कृपा करके इस बात को हमेशा के लिए समझ रखिए। अब, फिर, इस तरह बे सिर पैर की तर्कना न कीजिएगा।

नास्तिक—सृष्टि के बिना, अनादि काल से, स्रष्टा का विद्यमान रहना भी क्या सम्भव माना जा सकता है?

आस्तिक—जी हां। जो स्वतः सिद्ध है, जो अविनाशी है, उसके लिए यह बात सर्वथा सम्भव है। नक़शा बनाने के पहले क्या नक़शा-नवीस विद्यमान नहीं रहता। जो बात यःकश्चित् मनुष्य के लिए सम्भव है वह अविनाशी ईश्वर के लिए

सम्भव नहीं ! क्या खूब ! बड़ी कृपा हो यदि आप लड़कों की सी बातें करना छोड़ दें।

नास्तिक—क्या किसी नमूने के अनुसार आपके अनादि और अविनाशी स्रष्टा की उत्पत्ति नहीं हुई ?

आस्तिक—नहीं, कदापि नहीं। इस त्रिलोकी का नक़शा तैयार करनेवाला अनादि है और साथ ही अविनाशी भी है; इसलिए उससे पुराना कोई पदार्थ ही नहीं; फिर नमूना कैसा ? अनादि से अधिक अनादि और क्या हो सकता है ? अविनाशी से अधिक अविनाशी या वयस्क और कहां पाया जा सकता है ? यह सवाल आपका ऐसाही है जैसा कोई किसीसे पूछे—"क्या कोई चीज़ वृत्त से भी अधिक वर्तुल है ? अथवा क्या कोई चीज़ त्रिकोण से भी अधिक त्रिकोणवान् है ?

नास्तिक—जगत् में ये जो सैकड़ों भूकम्प होते हैं; और, इस समय, प्लेग से ये जो राशि राशि मनुष्य काल के गाल में धँसते चले जाते हैं, उसमें तो हमें आपके पराकाष्ठा के ज्ञानी परमेश्वर की नक़शानवीसी का कोई अच्छा नमूना नज़र नहीं आता।

आस्तिक—अगर नहीं नज़र आता तो कोई तअज्जुब की बात नहीं; क्योंकि आपने अपनी बड़ी ही विलक्षण बहस से यह अच्छी तरह साबित कर दिया है कि ऐसे गुरुतम विषय की बाबत जो कुछ आप जानते हैं वह निहायत ही कम है। जब तक आप उस "पराकाष्ठा के ज्ञानी" के नक़शे को न देख लें; अथवा, उसे किसी दूसरे से बख़ूबी न समझ लें; तब तक उसमें ऐबजोई करना समझदार आदमियों की नज़र में अपनेको हक़ीर बनाना है। एक दिन पञ्जाबमेल विकट वेग से जा रहा था। फ़तहपुर से एक मील इलाहाबाद की तरफ़, एक गाँव के पास, एक फाटक था। वहां पर एक देहाती लड़का बड़े ग़ौर से उस वेगगामी मेल के एञ्जिन को, आँख ऊपर किये हुए, देख रहा था। इतने में जलते हुए कोयले का एक ज़र्रा उसकी आँख में पड़ गया। पड़ते ही उस लड़के की आँख जल उठी। इस पर, तकलीफ़ से बेचैन हो कर उसने कहा—"किस बेवक़ूफ़ ने करोड़ों रुपये ख़र्च करके ऐसी रेल बनाई जिसने मेरी आँख जला दी। इसमें न तो मुझे बनानेवाले की अक़्लमन्दी का पता लगता है और न कहीं उसकी उदारता ही का चिन्ह नज़र आता है"! कौन कहेगा कि यह बाल तत्ववेत्ता उसी स्कूल में न पढ़ता होगा जिसमें आपने पढ़ा है ? और बड़ा होने पर, ऊँचे चबूतरे पर चढ़कर, वह आपही की ऐसी वक्तृता न झाड़ेगा ?

नास्तिक—जो कुछ हम कहते या पूछते हैं उसका सीधा जवाब दिया कीजिए। आपकी तक़रीर बहुत कड़वी होती है। हम देखते हैं कि, इस दुनिया में, करोड़ों जीवधारी दूसरे जीवों की जान पर बसर करते हैं। अब आप कहिए कि जब संसार का नक़शा बना था, या, जब इसका नमूना तैयार हुआ था, तब क्या यह मार काट और जीवहिंसा वग़ैरह भी उसमें शामिल कर ली गई थी ? यदि हां, तो अपने "पराकाष्ठा के ज्ञानी" की उदारता की आपही प्रशंसा कीजिए।

आस्तिक—पहले आप यह फ़रमाइए कि कब और किस जगह हमने टेढ़ा जवाब दिया। करिए कृपा। आप परमेश्वर को भी अज्ञान, पापी और अनुदार साबित करने की जो जान से कोशिश कर रहे हैं। ईश्वर को भी आप नहीं छोड़ते। ऐसी तक़रीर को आप शायद बहुत मुलायम और बहुत मधुर समझते होंगे ! विष वमन करके मिठाई पाने के लिए प्रार्थना !!!

जब तक हुज़ूर यह न साबित कर दें कि ईश्वर ने जान बूझ कर इस जगत् को ऐसा बनाया कि करोड़ों जीवधारी दूसरे जीवों की जान पर बसर करें, तब तक ईश्वर के खींचे हुए नक़शे को ग़लत बताने, या खींचनेवाले को अनुदार और ज्ञानहीन कहने का आपको बिलकुल मजाज़ नहीं। जीवहिंसा होना ईश्वर की अनुदारता या अज्ञानता का कोई प्रमाण नहीं। इस हिंसा का कारण ईश्वर पर आरोपित करने के पहले उसे साबित करने को

उदारता दिखाइए। और के साथ नहीं, तो ईश्वर के साथ तो आपको बेइन्साफ़ी न करना चाहिए।

जितने पातक हैं, उन सबका कारण मनुष्य की स्वतन्त्रता है; और जितने क्लेश हैं उन सबका कारण पातक हैं। शरीर से सम्बन्ध रखनेवाले जितने क्लेश हैं, वे सब विशेष करके मानसिक क्लेशों से उत्पन्न होते हैं; और जितने मानसिक क्लेश हैं वे सब परमेश्वर की दी हुई स्वतन्त्रता को बुरे तौर पर काम में लाने से, उत्पन्न होते हैं। स्वतन्त्रता स्वयं बुरी नहीं है। ईश्वर ने मनुष्य को स्वतन्त्रता ज़रूर दी है; पर इसलिए नहीं कि वह उसका दुरुपयोग करै; किन्तु, इसलिए, कि वह उसका सदुपयोग करके सच्चे सुख की वृद्धि करै। परन्तु मनुष्य ने परमेश्वर की दी हुई स्वतन्त्रतारूपी इस अनमोल वस्तु का बहुत ही बुरी तरह से उपयोग किया। इसका नतीजा यह हुआ, कि जो स्वाभाविक क्रम था उसमें व्यतिक्रम पैदा हो गया; जहां सम्पूर्ण शान्ति थी वहां अशान्ति ने अपना डेरा डाला। बड़ी कृपा करके ईश्वर ने मनुष्य को स्वतन्त्रता दी; पर मनुष्य ने ईश्वर के साथ विश्वासघात किया। इस कारण जो क्रमभङ्गता, जो बेतरतीबी, जो अशान्ति उत्पन्न हो गई वह, गोया, उस विश्वासघातकता के लिए मनुष्य को समुचित दण्ड मिला। मालिक जो काम नौकर के सिपुर्द करता है उसके लिए वह उसे पूरा ज़िम्मेदार भी समझता है। इस हालत में नौकर अगर अपना काम ईमानदारी से नहीं करता तो उसे ज़रूर सज़ा मिलती है; और साथ ही, उसकी बदनामी भी होती है।

स्वतन्त्रता का दुरुपयोग करने से जो क्लेश उत्पन्न होते हैं उनकी ज़िम्मेदारी परमेश्वर पर नहीं आरोपित की जा सकती। जो लोग, इस विषय में, परमेश्वर को दोष देते हैं, वे शराबियों की तरह निरर्थक बकवाद करते हैं। ऐसे आदमियों की तुलना हम उन डाकू मुजरिमों से कर सकते हैं जो सख़्त क़ैद की सज़ा पाने पर जज को दोषी ठहराते हैं। संसार में दुःख और क्लेश की कमी नहीं है, आपदा और यन्त्रणा की कमी नहीं है—यह हम ज़रूर मानते हैं। परन्तु सृष्टि का विकाश करते या उसका नक़शा बनाते समय ईश्वर ने उनकी योजना नहीं की।

जो लोग मनुष्य-जीवन को कीड़े मकोड़ों का सा जीवन समझते हैं और यह ख़याल करते हैं कि शरीर का नाश होते ही आत्मा का भी नाश हो जाता है उनको ये सांसारिक क्लेश ज़रूर संतप्त करते हैं। परन्तु हम ऐसा नहीं समझते। हमारी तुच्छ बुद्धि में मनुष्य को अनन्त काल तक ज़िन्दा रहना है। अतएव यह चन्दरोज़ा ज़िन्दगी उसके लिए गर्भवास के तुल्य है; और ये सांसारिक क्लेश, उन तकलीफ़ों के तुल्य हैं, जो विदेश से स्वदेश जानेवाले पथिक को, पथ में उठाने पड़ते हैं। जब अपने प्यारे घर के आराम और आसायशों का ख़याल आता है तब इन क्लेशों का बोझ हलका हो जाता है और इनकी तीक्ष्णता जाती रहती है। ईश्वर में विश्वास रखनेवाले इन क्लेशों को धैर्य्यपूर्वक सहन करते हैं, और सत्कर्म्म द्वारा अपने कृतापराधों का परिमार्जन करके, मृत्यु के अनन्तर, अनन्त और अविनाशी स्रष्टा में लीन हो जाने की आशा रखते हैं। परन्तु ईश्वर में अविश्वास रखनेवाले, आपके समान, उन्मत्तवत् प्रलाप करते हुए, नाना प्रकार के क्लेशों में, यहां, वहां और सब कहीं, सदा पच्यमान रहते हैं।

आज, आपके लिए, शायद इतना ही बस होगा।

इति द्वितीयाध्याय।

यमलोक का जीवन।

उत्तरी ध्रुव की ओर, आज तक, अनेक साहसी योरोपियन गये हैं। तत्सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त करने के लिए बहुत चेष्टायें हुई हैं। और अब तक हो भी रही हैं। उस वर्ष डाक्टर नानसन उत्तरी ध्रुव में बहुत दूर निकल गये। वहां

तक और कोई नहीं गया था। अपने भ्रमण का वृत्तान्त जो उन्होंने प्रकाशित किया है वह बहुत ही मनोरञ्जक है। उत्तरी ध्रुव की ओर तो बहुत लोगों का ध्यान था; परन्तु, आज तक, दक्षिणी ध्रुव में सैर करने और उसकी व्यवस्था जानने का विचार दोही एक आदमियों के मन में आया था। परन्तु विद्या और सभ्यता की वृद्धि के साथ साथ नई नई बातों को जानने, नये नये काम करने, और नये नये देशों का पता लगाने के लिए मनुष्यों की प्रवृत्ति सहजही हो रही है। इसी प्रवृत्ति के वशीभूत हो कर दो एक साहब उस तरफ़ कुछ दूर तक गये भी; परन्तु थोड़ी ही दूर से उनको लौट आना पड़ा। लोगों का ख़याल था कि उत्तरी ध्रुव का ऐसा बर्फ़ दक्षिणी ध्रुव में नहीं है; और वहां जानने के लायक़ कोई विशेष बातें भी नहीं हैं। परन्तु कुछ काल से किसी किसी को दूर तक दक्षिणी ध्रुव में जानने की उत्सुकता बहुत बढ़ गई; यहां तक कि कुछ जरमन लोगों ने उस दिशा की ओर बड़े बड़े जहाज़ों में प्रयाण भी किया। वे अभी तक वहीं हैं; उन्होंने दक्षिणी ध्रुव का बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त किया है। उनके भ्रमण वृत्तान्त के प्रकाशित होने पर वहां का विशेष हाल सुनने को मिलेगा। जरमनीवालों की देखा देखी इङ्गलैण्ड से भी कुछ लोग दक्षिणी ध्रुव की ओर गये हैं। इन लोगों को इङ्गलैण्ड की रायल सोसायटी ने भेजा है। जो लोग गये हैं वे अभी तक लौटे नहीं। उनमें से डाकृर शैकल्टन बीमारी के कारण लौट आये हैं। उन्होंने लोगों के कौतूहल को निवारण करने के लिए इस चढ़ाई का संक्षिप्त वृत्तान्त प्रकाशित किया है। उन्हींके वृत्तान्त के आधार पर इस दक्षिणी ध्रुव की चढ़ाई के सम्बन्ध में हम यह लेख लिख रहे हैं।

पौराणिकों का यह मत है कि दक्षिण में यम का वास है; अथवा दक्षिण यम की दिशा है। इस लिए उसे वे याम्य दिशा कहते हैं। जब दक्षिण याम्य दिशा हुई तब यम-लोक भी उसी तरफ़ हुआ। यही कारण है जो हमने इस लेख का नाम "यम-लोक का जीवन" रक्खा है।

इस चढ़ाई का प्रबन्ध रायल सोसाइटी और रायल जियाग्राफ़िकल सोसाइटी ने किया। गवर्नमेण्ट ने भी ६,७५,००० रुपया देकर इसकी सहायता की। इसके लिए "डिस्कवरी" नाम का एक ख़ास जहाज़ तैयार किया गया। कप्तान स्काट इसके अधिकारी नियत हुए। यह धूमपोत इङ्गलैण्ड के काउस स्थान से, महाराज सातवें यडवर्ड और उनकी महारानी के सामने, ६ आगस्ट १९०१ को छूटा। इस पर सरकारी सामुद्रिक विभाग के चुने हुए ११ अफ़सर और ३७ मनुष्य भेजे गये। उनके साथ उत्तरी ध्रुव के २३ कुत्ते भी भेजे गये। ये कुत्ते बर्फ़ के ऊपर छोटी छोटी गाड़ियां खींचने के लिए थे।

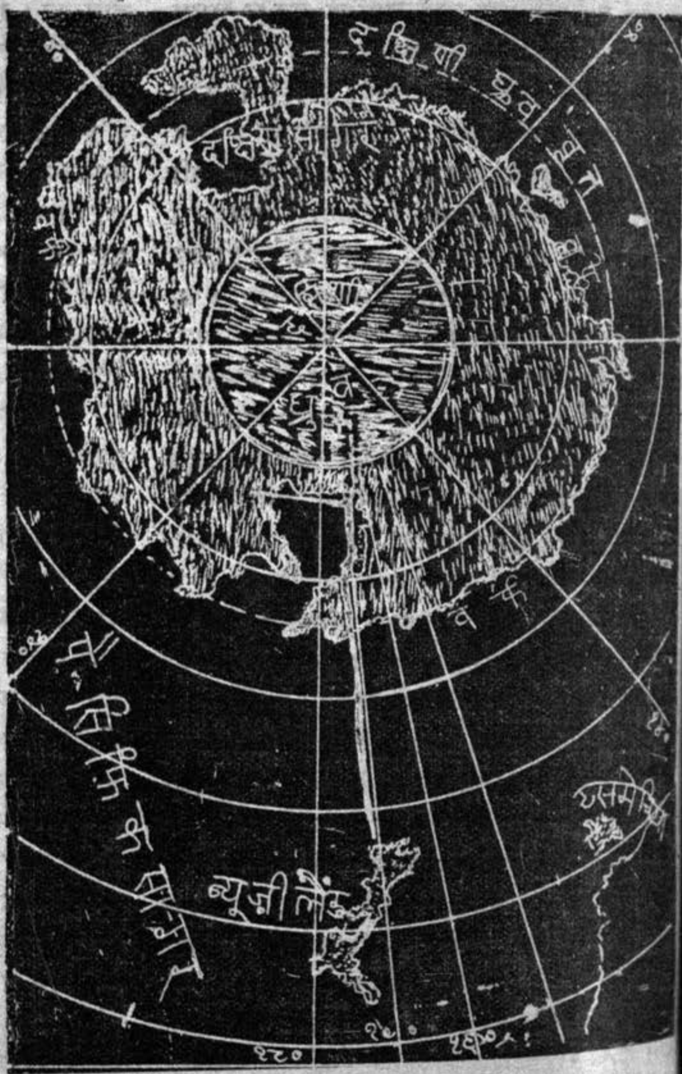
१५०० मील की यात्रा करके यह धूमपोत ९ जनवरी १९०२ को दक्षिणी ध्रुव के किनारे पहुँचा। दक्षिणी ध्रुव के आस पास का प्रदेश आस्ट्रेलिया के बराबर है। वहां पहुंच कर, जहां तक हो सका, इस चढ़ाई ने अपना काम किया; अनन्तर इसको यरबस नामक सजीव ज्वालामुखी पहाड़ के पास ठहर जाना पड़ा। क्योंकि जाड़े के दिन आ गये; और बर्फ़ अधिक पड़ने के कारण चढ़ाई के लोग और अधिक काम न कर सके। ८ फ़रवरी को काम बन्द हुआ। सब लोग बरफ़ से बचने और दक्षिणी ध्रुव की लम्बी रात में आराम से रहने का प्रबन्ध करके ठहर गये। वहां की रात २ अप्रैल से २७ अगस्त तक रहती है। रात का आरम्भ हुआ; बर्फ़ भी ख़ूब पड़ने लगा। ४०० मील तक समुद्र के ऊपर बर्फ़ जम गया। "डिस्कवरी" का सम्बन्ध बाहरी दुनियां से बिलकुल ही छूट गया।

नवम्बर १९०२ में कप्तान स्काट, डाकृर विलसन और लफ़्टिनेण्ट शैकल्टन ने सब कुत्ते साथ लिए और स्लेज नाम की छोटी छोटी गाड़ियां लेकर वे बर्फ़ के ऊपर दक्षिणी ध्रुव की ओर दूर तक चले गये। मार्ग में उनको सख़्त तकलीफ़ें हुईं।

तथापि वे ८२°१७ अंश तक दक्षिण की ओर गये ओर वहां पर उन्होंने अङ्गरेज़ी झण्डा गाड़ा। दक्षिणी ध्रुव वहां से ४६७ मील रह गया। आज तक जितने लोग दक्षिणी ध्रुव की तरफ़ गये थे, उन सबसे ये लोग २०७ मील ओर आगे बढ़ गये। इस चढ़ाई की सहायता के लिए ओर इसे भोजन वस्त्र इत्यादि पहुंचाने के लिए पीछे से दो धूमपोत ओर भेजें गये। उन्हींमें से "मार्निङ्ग" नाम के धूमपोत में लफ़्टिनेण्ट शैकल्टन, बीमार हो जाने के कारण, इङ्गलैण्ड लैाट आये। इन्होंने दक्षिणी ध्रुव की जीवन यात्रा के सम्बन्ध में जो कुछ प्रकाशित किया है उसका सारांश उन्ही के मुँह से सुनिये।

उत्तरी ध्रुव की अपेक्षा दक्षिणी ध्रुव में शीत अधिक है। उत्तरी ध्रुव के जिस अंश में जितना शीत है, दक्षिणी ध्रुव के उसी अंश में उस शीत की अपेक्षा बहुत विशेष है। पृथ्वी का वह भाग, जो दक्षिणी ध्रुव के आस पास है, ऐसा शोभाशाली है कि एक बार वहां जाकर फिर लैाटने को जी नहीं चाहता। वहां के शीत को, वहां की तकलीफों को ओर वहां की निर्जनता की कुछ परवा न करके पुनर्वार वहां जाने की इच्छा होती है। उसकी प्राकृतिक शोभा कभी नहीं भूलती। वह वहां बलात् ले जाने के लिए चित्त को उत्कण्ठित किया करती है।

चलते चलते एक दिन सहसा हम लोगों को कुछ सफ़ेदी नज़र आई। वह सफ़ेदी बर्फ़ के छोटे छोटे टुकड़ों की चादर थी। हमारा जहाज़ (डिस्कवरी) धीरे धीरे उस बर्फ़ को फ़ाड़ता हुआ आगे बढ़ने लगा। कुछ देर बाद हमारे दाहने बांये ओर आगे पीछे समुद्र शुभ्र रजतमय हो गया। बर्फ़ की सफेद लाइन, जिस तरफ़ नज़र उठाइए उसी तरफ़, देख पड़ने लगी। उस बर्फ़ के ऊपर सील नामक मछलियां ओर पेनगुइन नामक चिड़ियां आनन्द से



दक्षिणी ध्रुव का चित्र।

खेल रही थीं। सीलों ने तो हमारी कुछ परवा न की। उन्होंने हमारी तरफ़ नज़र तक नहीं उठाया।

परन्तु पेनगुइन चिड़ियां एक विलक्षण प्रकार की आवाज़ करते हुए हमारी तरफ़ दौड़ीं। हमारे जहाज़ के। देखकर उन्हें आश्चर्य सा हुआ। उन्होंने शायद अपने मन में समझा कि यह कोई महा-बलवान दानव उनके घर में घुस आया है। ये चिड़ियां बहुत बड़ी न थीं। उनकी छाती सफ़ेद और पीठ काली थी।

पाँच रोज़ तक उस पतले बर्फ़ के। फाड़ता हुआ हमारा जहाज़ चला गया। छठे रोज़ हम के। दक्षिणी ध्रुव के पास का प्रदेश देख पड़ा। बर्फ़ से ढके हुए उन आकाशभेदी पर्वतों का दृश्य हम के। कभी न भूलैगा। १० से लेकर १५ हज़ार फ़ीट तक वे स्वच्छ और निरभ्र नीले आकाश के भीतर चले गये थे। यहां पर हम लोगों के लिए बहुत कम काम था। पैाधों और जीवधारियों के नमूने हम लोगों के। लेने थे। परन्तु यहां पर दो एक सामुद्रिक पैाधे, सील और पेनगुइन के समान दो चार चिड़ियों के। छोड़कर और कुछ था ही नहीं। यह बात उत्तरी ध्रुव में नहीं है। वहां अनेक प्रकार के वनस्पति और पशु पक्षी पाये जाते हैं।

दक्षिणी ध्रुव में एक प्रकार की सील बहुत अधिकता से होती है। उसी पर हम लोग प्रायः बसर करते थे। तैाल में वह कोई १४ मन होती है। ये मछलियां बर्फ़ के ऊपर धीरे धीरे घूमा करती हैं; आदमी से वे ज़रा भी नहीं डरतीं। उन्होंने कभी आदमी देखा ही नहीं। अतएव मारने के लिए भी यदि आदमी उनके पास पहुँचते हैं तब भी वे अपनी जगह से नहीं हटतीं। परन्तु पेनगुइन का मिज़ाज ऐसा सीधा नहीं। वे आदमी के। देखकर उन पर हमला करने के लिए दौड़ती हैं। इन चिड़ियों के घोंसले बहुत छोटे और भद्दे होते हैं। जब ये चिड़ियां अपने बच्चों के। खिलाती हैं तब उनके। देखकर बड़ा आनन्द आता है। बच्चों के मा बाप पासवाली समुद्र की उथली खाड़ियों की ओर उड़ जाते हैं। वहां वे मछलियां वग़ैरह का शिकार करके अपने मुह में रख लेते हैं। जब मुँह भर जाता है तब वे अपने घोंसलों के। उड़ आते हैं। वहां आते ही उनके बच्चे उनके मुँह में अपनी चोंच डाल कर बड़े प्यार और बड़े प्रेम से उन लज़ीज़ चीज़ों के। खाते हैं।

जिस समय का ज़िकर है वह ग्रीष्मऋतु थी—ग्रीष्म क्या उसे वसन्त ही कहना चाहिए। किसी किसी दिन आकाश निरभ्र और सूर्य चमकीला नज़र आता था। जब सूर्य की किरणें बर्फ़ के ऊंचे ऊंचे टीलों पर पड़ती थीं तब बड़ा कैातुक मालूम होता था। उनके। देखकर तबीयत बहुत ख़ुश होती थी। जान पड़ता था कि तपाये हुए सुर्ख़ सोने के तार सूर्यमण्डल से उन राशि-राशि-मय बर्फ़ के शिखरों तक फैले हुए हैं। यह ऋतु सिर्फ़ छ हफ़्ता रहती है। १६ दिसम्बर से ३१ जनवरी तक ही यह शोभा देखने के। मिलती है।

जिस दिन यरबस नामक ज्वालामुखी पर्वत हम लोगों के। पहले पहल दिखलाई दिया, वह दिन हमें बख़ूबी याद है। इस पर्वत का पता, ६० वर्ष हुए, सर जेम्स रास ने लगाया था। यह पर्वत १२,५०० फ़ीट ऊंचा है। जब हम लोग उसके पास पहुंचे, हमने देखा कि उसके मुँह से धुवां की धारा भक भक निकल रही है। जहां चारों ओर बर्फ़ के ऊंचे ऊंचे टीले खड़े हुए हैं, जहां समुद्र ही बर्फ़-मय हो गया है, वहां इस ज्वालागर्भ पर्वत के। देख कर बड़ा विस्मय होता है। जहां प्रचण्ड शीत वहां अग्नि वमन करनेवाला पर्वत! परन्तु प्रकृति बड़ी विचित्र है। वह अपनी विचित्रता के ऐसे ही ऐसे विलक्षण उदाहरण कभी कभी दिखलाती है। इस पहाड़ के नीचे ही, कुछ दूर पर, हम लोगों ने शीत ऋतु बिताने के लिए, रहने का स्थान बनाना चाहा। हमके। आशा थी कि यहां रहने से हम लोगों के। कुछ गरमी मिलैगी; परन्तु हमारा यह ख़याल बिलकुल ही ग़लत निकला।

पहले ते। हम लोगों के। बहुत गरम कपड़े नहीं पहनने पड़े; परन्तु कुछ काल में, थर्म्मामीटर का पारा शून्य (०) के नीचे चला गया। तब हम लोगों

ने निहायत गरम कपड़े निकाले। मोटे चमड़े के बूट भी सर्द मालूम होने लगे; इस कारण से सम्बूर के बूट पहनने की ज़रूरत पड़ी।

बर्फ़ की वर्षा अधिक हो गई। हमारा जहाज़ बड़ी मुशकिल से आगे बढ़ने लगा। हम लोगों को भय हुआ कि कहीं नियत स्थान पर पहुंचने के पहले ही जहाज़ न रुक जाय। परन्तु राम राम करके किसी भाँति हम लोग वहां तक पहुंचे जहां हमने जाड़ा व्यतीत करना निश्चय किया था। हम को मालूम था कि १२२ दिन की रात आनेवाली है। इसलिए बहुत जल्द हमने ठहरने का प्रबन्ध किया और सब सामान ठीक करके जहाज़ का लङ्गर डाला।

ज्यों ही जहाज़ ठहरा और उसके चारों तरफ़ बर्फ़ का ढेर इकट्ठा हुआ, त्यों ही हम लोगों ने बर्फ़ में बड़े बड़े बाँस गाड़ दिये और किनारे तक गाड़ते चले गये। फिर लम्बे लम्बे रस्से लेकर हमने उन बाँसों पर बांधे। बिना यह किये हम लोगों को जहाज़ का पता लगाना मुशकिल हो जाता। तब किनारे पर एक झोपड़ा बनाया गया और उसमें थर्मामीटर और बारोमीटर इत्यादि यन्त्र रक्खे गये।

सूर्य बिलकुल ही आकाश से लोप होने को हुआ। परन्तु उसका सम्पूर्ण तिरोभाव होने के पहले, एप्रिल के महीने में, कई दिनों तक २४ घण्टे का उषः काल रहा। अस्ताचलगामी सूर्य की किरणों के सुन्दर रङ्ग बर्फ़ के संयोग से ऐसा मनोहर दृश्य दिखलाने लगे कि उनका वर्णन साधारण मनुष्य से होना असम्भव है। उस शोभा को चित्रित करने के लिए कालिदास या शेक्सपियर की लेखनी ही समर्थ हो सकती है।

ध्रुवप्रदेश की रात एक ऐसी वस्तु है जिसकी समता संसार की और किसी वस्तु से नहीं दी जा सकती। वह सर्वथा अनुपमेय है। वह कैसी होती है—इस बात के जानने के लिए उसे आँख से देखना चाहिए। लिखने या बतलाने से उसका ज़रा भी अनुमान नहीं हो सकता। ज्यों ही रात हुई और शीत बढ़ा, त्यों ही हम लोगों ने सम्बूर के कोट, बूट और टोपियां वगैरह निकालीं। मोटे मोटे नोले कोटों के ऊपर हमने, शीतल हवा से बचने के लिए, एक विशेष तरह का "ओवर कोट" भी पहना। बर्फ़दंश एक प्रकार का रोग होता है। उसके होने का हम लोगों को पल पल पर डर मालूम होने लगा। हम लोग एक दूसरे के मुँह की तरफ़ देखने लगे कि कहीं बर्फ़दंश के चिन्ह तो नहीं हैं। जिसे बर्फ़दंश होता है उसे ऐसा जान पड़ता है कि बर्र ने डङ्क मारा। जिसे इस तरह का दंश होता था वह फ़ौरन अपना दस्ताना उतार कर उस जगह को देर तक रगड़ता था। ऐसा करने से पीड़ा कम हो जाती है और विशेष विकार नहीं बढ़ता। परन्तु यदि ऐसा न किया जाय तो उस जगह मांस के गल जाने का डर रहता है।

यहां पर बहुत सख्त जाड़ा पड़ता है। जाड़े का अनुमान करने के लिए हम यह लिख देना चाहते हैं कि हम लोग २ या ३ मिनट से अधिक अपने हाथों को दस्ताने के बाहर नहीं निकाल सकते थे। यदि इससे ज़रा भी अधिक देर लग जाय तो फ़ौरन ही बर्फ़-दंश हो जाय। इतना जाड़ा पड़ने पर भी मुँह के आस पास का भाग बिलकुल खुला रखना पड़ता था। अगर खुला न रक्खा जाय, वा किसी चीज़ से ढक दिया जाय, तो मुँह से निकली हुई साँस फ़ौरन जम जाय—यहां तक कि उसके जमने से आँखों की बरोनियां चिपक जायँ। ऐसा होने से हम लोग कुछ देर के लिए अन्धे हो जायँ। नंगे हाथ से हम लोग धातु की कोई चीज़ नहीं छू सकते थे। अगर छूते तो फ़ौरन ही एक सफ़ेद सफ़ेद दाग़ पड़ जाता, और उस जगह पर बर्फ़दंश की पीड़ा होने लगती। एक दिल्लगी सुनिए। एक टीन में कोई चीज़ रक्खी थी। वह टीन बर्फ़ के ऊपर पड़ी थी। उसे हमारे एक कुत्ते

[ने] देखा और ज़बान को भीतर डाल कर उसे वह [च]ाटने लगा। बस दो तीन दफ़ा ज़बान लगाने की देर थी कि वह वहीं चिपक गई। कुत्ता बेचारा चीख़ने और दर्द से बेक़रार होने लगा। यह तमाशा एक ख़लासी ने देखा। वह वहां दौड़ा आया। बलपूर्वक उसने उस टीन को कुत्ते की ज़बान से अलग किया।

ज़ोर से जाड़ा पड़ने के पहले हम लोगों ने अपनी छोटी छोटी बे पहिये की गाड़ियों में कुत्ते जोते और जहाज़ से कुछ दूर आगे का सफ़र करना विचारा। हम लोग रवाना हुए। बारह घण्टे तक हम बाहर रहे। इस बीच में बर्फ़ का एक सख्त तूफ़ान आया। इससे हम लोगों की बड़ी दुर्दशा हुई। मुँह में, और हाथों में भी बर्फ़दंश की पीड़ा होने लगी। इसलिए हमने तत्काल अपने छोटे छोटे ख़ेमे खड़े किये और बड़ी मुशकिल से हाथ पैरों के बल रेंग कर उनके भीतर हम सब गये। यदि ऐसा करने में और ज़रा देर हो जाती तो हम लोगों का काम वहीं तमाम हो जाता।

लफ्टिनेण्ट रायड्स और मिस्टर स्केल्टन भी कुछ आदमियों के साथ, बे-पहिये की गाड़ियां लेकर, हमारे जहाज़ से कोई ६० मील दूर तक चले गये। इन गाड़ियों को कुत्ते खींचते थे। रास्ते में एक भयानक बर्फ़ का तूफ़ान आया। इस कारण इन लोगों को पाँच दिन तक छोलदारी के भीतर बन्द रहना पड़ा। जब तूफ़ान बन्द हुआ तब इन्होंने देखा कि छोलदारी के ऊपर नीचे, इधर उधर, सब कहीं बर्फ़ जम गया है। बड़ी कठिनाई से बर्फ़ को कुदारियों से काट कर ये लोग उसके भीतर से बाहर आये। समुद्र के जम जाने के कारण, हम लोगों ने, इसी प्रकार, इन छोटी छोटी गाड़ियों में दूर दूर तक का सफ़र किया और जीव जन्तु और वनस्पति, भूगोल और भूस्तर-विद्या-सम्बन्धी अनेक जाँचें कीं; और अनेक प्रकार की वस्तुओं के नमूने इकट्ठे किये।

इस चढ़ाई में कुत्तों ने बड़ा काम किया। हमारे पास सब २३ कुत्ते थे। क्या ही अच्छा होता यदि हम लोग अधिक कुत्ते ले गये होते। एक एक कुत्ता सवा मन के क़रीब बोझ से लदी हुई गाड़ी खींचता था। इन कुत्तों में कुछ कुतियां भी थीं। जाड़े में उनसे ९ पिल्ले पैदा हुए। परन्तु वे बहुत छोटे हुए। वे अपने मा बाप के न तो डील डौल में बराबर हुए और न बल में।

हमारे साथ एक बिल्ली भी थी। एक दफ़ा रात को हमारे झोपड़े के ऊपर वह गई। वहां वह कुछ अधिक देर तक रही। जब वह भीतर आई तब हम लोगों ने देखा कि उसका एक कान ही नदारद है! अगर ज़रा देर वह और वहां रहती तो शायद वह वहां से ज़िन्दा न आती।

आठ बजे सुबह हम लोग भोजन करते थे। खाने की सामग्री में हलवा, सील मछली का गोश्त, रोटी, मक्खन, मुरब्बा, चाय और क़हवा मुख्य चीज़ें थीं। ९ बजे ईश्वर की प्रार्थना होती थी। प्रार्थना-पाठ जहाज़ का कप्तान करता था। फिर सब आदमी अपने अपने काम में लग जाते थे। कुछ आदमी सोने के वास्ते थैलियां सीते थे; इन्हीं थैलियों के भीतर हम लोग रात को घुसे रहते थे। कुछ उन थैलियों की, और दूसरे कपड़ों की, मरम्मत करते थे; कुछ जहाज़ के ऊपर जमे हुए बर्फ़ को साफ़ करते थे; कुछ जहाज़ पर पड़े हुए मोम-कपड़े की मरम्मत करते थे—क्योंकि बर्फ़ के गिरने से उसमें सैकड़ों छेद हो जाते थे। कुछ आदमी सील मछलियों और चिड़ियों की खाल खींच कर उनमें मसाला भरते थे। ये चीज़ें इङ्गलैण्ड को लाये जाने के लिए नमूने के तौर पर रक्खी गई हैं। कुछ आदमी जलचर जीवों की तलाश में जाते थे; कुछ वनस्पतियों को खोजने निकल जाते थे; और कुछ भूस्तर-विद्या के विषय में ज्ञान प्राप्त करने को बाहर निकलते थे। एक बजे फिर हम लोग भोजन करते थे। आठ बजे रात को जहाज़ की देख भाल

होती थी और बाद उसके हम लोग ताश वग़ैरह खेलकर सो रहते थे।

हम लोगों ने "साउथ पोलर टाइम्स" नामका एक अख़बार भी लिखना शुरू किया। वह महीने में एक बार लिखा जाता था। जहाज़ पर जितने अफ़सर थे सब उसमें लेख लिखते थे; और लोग भी कोई कोई उसमें लिखते थे। लेखों में इस चढ़ाई का सविस्तर वर्णन रहता था। इस अख़बार के अङ्क अभी तक प्रकाशित नहीं हुए। चढ़ाई के लौट आने पर वे इङ्गलैण्ड में प्रकाशित होंगे।

वहां बाहर कोई पौधा नहीं हो सकता था। मगर हम लोग इङ्गलैण्ड से एक बक्स में थोड़ी सी मिट्टी ले गये थे। उसीमें हमने "क्रोक्यूसेज़" नामक पौधे के बीज बोये। उनमें से दो पौधे हुए। फूल भी उनमें यथासमय निकले। "गुड फ्राईडे" को हम लोग उन फूलों को देख कर बहुत ही प्रसन्न हुए। हमारे जहाज़ में वह मानों हमारी एक छोटी सी फुलवाड़ी थी।

किसी किसी रात का दृश्य बड़ा ही मज़ेदार था। जिस समय पूरा चन्द्रबिम्ब आकाश में उदित होता था उस समय वह सारा प्रदेश दुग्धफेन के समान शुभ्र दिखलाई देता था। कभी कभी उत्तर की ओर, दूर; सफ़ेद रोशनी का एक धुँधला पुञ्ज देख पड़ता था जिस से मालूम होता था कि सूर्य ने अपना मुँह ढाँप रक्खा है; तथापि वह वहीं पर कहीं प्रकाशित है। इस महा विस्तृत और महा आतङ्कजनक सफ़ेद मैदान की शोभा मैं नहीं बयान कर सकता। उससे अधिक सौन्दर्य्य-मय वस्तु मैंने संसार में दूसरी नहीं देखी। कुछ दूर पर बर्फ़ से ढके हुए ऊंचे ऊंचे पर्वत नज़र आते थे और आसमान को फाड़कर उसके भीतर चले जाने की चेष्टा सी करते थे। पासही वह ज्वालामुखी पर्वत अपने अग्निवर्षी मुंह से धुवां के प्रचण्ड पुञ्ज छोड़ रहा था। अहः, क्याही हर्ष और विस्मय से भरा हुआ दृश्य था!

२२ अगस्त को सूर्य ने हम लोगों को अपने पुनर्दर्शन से फिर कृतार्थ किया। हम लोग तत्काल उसके दर्शन के लिए बाहर निकले। जिसने सूर्य के बहु-काल-व्यापी लोप का अनुभव नहीं किया, वह कदापि नहीं जान सकता कि उसका पुनर्दर्शन कितना आनन्ददायक होता है। आकाश ने अजीब रङ्गत धारण की; उसने बलात् हम लोगों के हृदय को हरण कर लिया। जितने जीव और जितने पदार्थ थे सब में नया उत्साह और नया जीवन सा आ गया। जितने मेघ थे सब ने इन्द्रधनुष की शोभा छीनी; नानाप्रकार के मनो-मुग्धकारी रङ्गों से वे भर गये।

अब बे-पहिये की छोटी छोटी गाड़ियों को साथ लेकर बाहर निकलने का मौसम आया। सब तैयारियां शीघ्रही हुई। कुत्ते, छोलदारियां, खाने पीने का सामान, कपड़े लत्ते और सोने के लिए थैलियां तैयार हुई। हम लोग सफ़र के लिए निकल पड़े। जहां तक मुमकिन था हमने कम असबाब साथ लिया। इस सफ़र में हमने एक बार भी कपड़े नहीं उतारे। हां, मोज़े अलबत्ता हररोज़ निकालना पड़ते थे; क्योंकि न निकालने से पैरों के जम जाने का डर था। जब हम चले, हमारे सोने के थैलों का वजन ७ सेर था; परन्तु जब हम लौटे तब वह १४ सेर हो गया था। बर्फ़ ने उनके वज़न को दूना कर दिया था। जब दो आदमी कोशिश करके खोलते थे तब रात को सोने के वक़्त ये थैले खुलते थे। वे इतने ठंढे हो जाते थे कि उनमें और बर्फ़ में कोई अन्तर न रहता था। उसी के भीतर हम लोग किसी प्रकार बड़े कष्ट से रात बिताते थे। सुबह के वक़्त हमारे पैर सुन्न हो जाते थे; बड़ी बड़ी मुश्किलों से वे मोज़ों और बूटों के भीतर जाते थे।

ऐसी मुसीबतें झेलते हुए हम लोग ३०० मील तक गये। यहां तक जाने में हमको ९४ दिन लगे। किसी किसी दिन हम लोग १५ मील जाते थे। इस सफ़र में हमारे बहुत से कुत्ते मर गये।

इस लिए हम लोगों के स्वयं गाड़ियां खींचना पड़ीं। जब हम लोगों ने देखा कि हमारे कुत्ते मर रहे हैं तब हमने अपने खाने पीने का बहुत सा सामान एक जगह रखकर गाड़ियां हलकी करलीं। तेल भी कम कर दिया गया। इस लिए एकही दो बार चूल्हा जलने लगा। इसका फल यह हुआ कि हम लोगों के गरम खाना कम नसीब होने लगा। ज़रा सी शकर, सील के मांस का एक छोटा सा सूखा टुकड़ा और डेढ़ बिस्कुट पर हम लोग बसर करने लगे। ये चीज़ें हम रास्ते में चलते चलते खाते थे। कुत्तों की बुरी हालत थी। जब हम लोग खाते थे तब वे हमारे मुंह की तरफ़ देखा करते थे कि अगर कोई टुकड़ा नीचे गिरे ते वे उसे उठालें। मगर यह उदारता दिखलाना हम लोगों के लिए स्वयं अपनी मृत्यु के बुलाना था। जब शाम के हम लोग कहीं ठहरते तब हम एक कुत्ते के प्रायः गोली मार देते। उसीके मांस से दूसरे कुत्तों का गुज़र होता। प्रति दिन हमारी खूराक कम होने लगी; भूख से हम लोग विकल होने लगे; यहां तक कि बिस्कुट और हलवा हम लोगों के स्वप्न में भी देख पड़ने लगा। दिन रात खाने की चीज़ों का ही ध्यान रहता था। एक प्रकार की निराशता ने सबके चेहरों का रङ्ग फीका कर दिया। नवम्बर भर हम लोग इसी तरह सख्त मुसीबतों में मुब्तिला रह कर भी बराबर चले गये। दिसम्बर में भी यही हालत रही। अन्त के ३१ दिसम्बर के दिन हम लोग अपने सफ़र की अन्तिम सीमा पर पहुंचे; वहां से आगे हम न बढ़ सके। वहीं हमने अङ्गरेज़ी झण्डा खड़ा कर दिया।

खाने का सामान बहुत कम रह गया था। कुत्ते प्रायः सभी मर चुके थे। अतएव हम लोगों ने वापस जाने का विचार किया। वहां से हमारा जहाज़ कोई ३०० मील दूर था। सब लोग निहायत कमज़ोर हो गये थे। ख़ैर किसी तरह हम लोग पीछे लैाटे। हममें से किसी किसी के बर्फ ने कुछ कालके लिए अन्धा तक कर दिया। कलेजे के कड़ा करके हम सबने जहाज़ की तरफ़ पैर फेरा। धीरे धीरे सब कुत्ते मर गये; सिर्फ़ दो बचे। अतएव हम लोगों के खुद गाड़ियां खींचना पड़ीं। कभी कभी तीन तीन मन तक वज़न गाड़ियों में भर कर हमने खींचा। ओह, उस मुसीबत का स्मरण आते ही बदन काँपने लगता है। वर्णनातीत दुःख सहकर ३ फ़रवरी १९०४ के हम लोग अपने जहाज़ पर वापस आये। वहां हमने देखा कि हमारी मदद के लिए एक दूसरा जहाज़ आ गया है। उसमें हम लोगों की ख़ानगी चिट्ठियां और अख़बार वग़ैरह मिले। तब हमने जाना कि बोर-युद्ध को समाप्ति हो गई और हमारे बादशाह सातवें एडवर्ड की राज-गद्दी का जलसा भी हो चुका।

हमारा "डिस्कवरी" नामक जहाज़ १९०२ के आरम्भ से बर्फ के भीतर पड़ा है। आशा है वह शीघ्र ही वापस आवे और अपने काम की सफलता से भेजनेवालों ही के नहीं, किन्तु सारे संसार के आनन्द और ज्ञान की वृद्धि करे।

श्रीरङ्गपत्तन।

श्रीरङ्गपत्तन बहुत प्राचीन नगर है। इस समय वह प्रायः उजाड़ पड़ा है। परन्तु एक समय वह विशेष वैभवशाली था। जिस समय वहां हैदर अली और टीपू की राजधानी थी उस समय उसमें अनेक ऐसी बातें हुई हैं जिन्होंने दक्षिण के इतिहास के सैकड़ों पृष्ठों को व्याप्त कर लिया है।

श्रीरङ्गपत्तन माइसोर राज्य में है। वहां जाने के दो मार्ग हैं। एक जबलपुर या इटारसी हो कर मन्मार, धोंड, होटगी, रायचूर, आरकोनम, और बङ्गलोर के रास्ते; दूसरा होटगी से सीधे बङ्गलोर के रास्ते। पीछेवाला मार्ग सीधा है; परन्तु इधर से जाने में होटगी से छोटी पटरी की रेलवे लाइन

होकर जाना पड़ता हैं। इसलिए जानेवाला देर में पहुँचता है।

कावेरी नदी में एक छोटा सा द्वीप है। श्रीरङ्गपत्तन उसके पश्चिमी किनारे पर है। उसकी आबादी इस समय कोई १५,००० है। वहां श्रीरङ्गजी का एक मन्दिर है। उसी के नाम पर इसका नाम श्रीरङ्गपत्तन पड़ा है। इस मन्दिर में विष्णु की मूर्ति है। यह मन्दिर बहुत प्राचीन है। श्रीरङ्गपत्तन से यह बहुत पहले का है। प्राचीन होने के कारण इसमें स्थापित मूर्ति का नाम आदिरङ्ग है। यह मन्दिर क़िले के भीतर है। किम्बदन्ती है कि गौतम मुनि ने इस मन्दिर में बहुत दिन तक भजन पूजन किया था। एशियाटिक सोसायटी के जनरल के आठवें खण्ड में अध्यापक डौसन ने एक तामील लेख के आधार पर लिखा है कि ८९४ ईसवी में त्रिमल्लयान नामक एक पुरुष ने इस मन्दिर को बनवा कर श्रीरङ्ग की मूर्ति इसमें स्थापित की। तब से इस जगह का नाम श्रीरङ्गपत्तन हुआ।

११३३ ईसवी में रामानुजाचार्य को चोलराज ने बहुत तङ्ग किया। तब वे वहां से माइसोर को भाग आये। माइसोर में वल्लालवंश के जैनमतानुयायी विष्णुवर्द्धन नामक राजा को उन्होंने वैष्णव बनाया। उस राजा ने रामानुज को आठ गाँव दिये; उनमें से श्रीरङ्गपत्तन भी एक था।

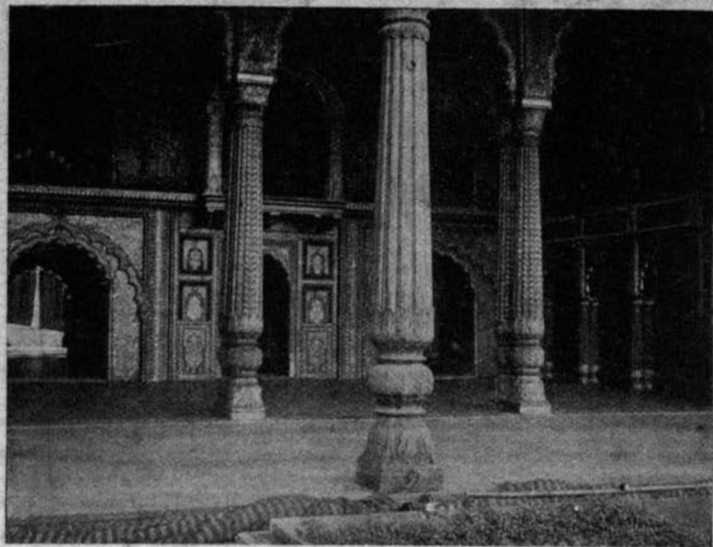
१४५४ ईसवी में हेबर तिमाना नामक सूबेदार ने विजय नगर के राजा से श्रीरङ्गपत्तन को ले लिया और वहां एक क़िला बनवाया। उसने, पास ही कलशवाड़ी स्थान के १०१ जैनमन्दिरों को तोड़ कर उनके ईंट पत्थर से श्रीरङ्ग के मन्दिर को और भी बढ़ाया। हेबर तिमाना के अनन्तर और कई सूबेदार श्रीरङ्गपत्तन में हुए। अन्तिम सूबेदार का नाम त्रिमल्लराज था। १६१० ईसवी में उसने श्रीरङ्गपत्तन का अधिकार माइसोर के बड़यार राजा को दे दिया। तब से यह स्थान माइसोर की राजधानी हुआ। माइसोर के राजाओं का प्रभुत्व जब क्षीण हुआ तब हैदर अली और टीपू ने इसे अपनी राजधानी बनाया। ४ मई १७९९ ईसवी को अंगरेज़ों ने इस स्थान को अपने अधिकार में किया। श्रीरङ्गपत्तन के क़िले के लेने में जो नरहत्या हुई वह इतिहासज्ञों पर विदित ही है।

श्रीरङ्गपत्तन में श्रीरङ्गजी के मन्दिर के सिवा एक और मन्दिर है। उसका नाम रामस्वामी का मन्दिर है। श्रीरङ्गजी का मन्दिर प्राचीनता और रामस्वामी का मन्दिर भव्यता के लिए प्रसिद्ध है।

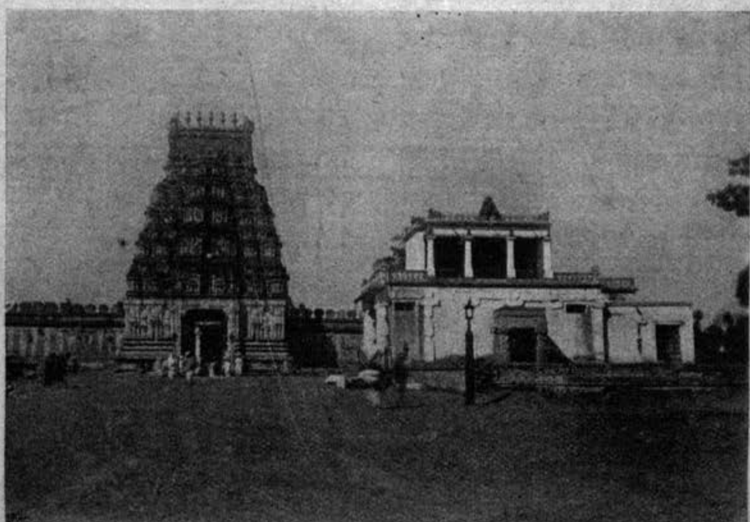
यहां पर जो क़िला है वह बहुत मज़बूत है। उसके तीन तरफ़ नदी है। इस क़िले में टीपू सुलतान और अंगरेज़ों में भीषण संग्राम हुआ था। टीपू स्वयं बड़ा बहादुर था; वह स्वयं मोरचों पर हाज़िर रहता और अपनी फ़ौज को बराबर उत्साहित करता था। परन्तु अंगरेज़ो सेना के वेग को वे लोग नहीं सहन कर सके। उनके पैर उखड़ गये। टीपू की फ़ौज का कुछ हिस्सा क़िले की दीवारों पर से नीचे कूद कर भागने लगा। इस कूदने में हज़ारों आदमियों की जान गई। जो मरे भी नहीं थे उनके हाथ पैर टूट गये। इस युद्ध में टीपू का घोड़ा गोली लगने से मारा गया। तिस पर भी टीपू ने बहुत देर तक युद्ध किया। आख़िर को उसका पतन हुआ। परन्तु उसको उस वक्त अंगरेज़ी फ़ौज ने नहीं पहचाना। वह एक सामान्य योद्धा की तरह युद्ध करता रहा। जब उसकी लाश मिली तब मालूम हुआ कि उसकी बाँह में सङ्गीन का एक बड़ा घाव लगा था।

१७८० से १७८५ ईसवी तक टीपू ने कर्नल बेली और कई और अंगरेज़ अफ़सरों को इस क़िले के उत्तरी भाग में क़ैद कर रक्खा था। जहां ये लोग क़ैद थे वह जगह अभी तक स्मारक के तौर पर वैसी ही बनी है।

क़िले के भीतर जितने मकान थे प्रायः सब गिरा दिये गये हैं। जो हैं भी वे बहुत बुरी हालत में हैं। यहां का जल वायु बहुत ख़राब है। एक सप्ताह भी वहां रहने से बोख़ार आये बिना नहीं रहता।



टीपू के महल का भीतरी दृश्य।



रामसमुद्रम् मन्दिर।

मृत्यु से कुछ समय पहले टीपू ने श्रीरङ्गपत्तन में एक जुमामसजिद बनवाई थी। यह अभी तक अच्छी हालत में है। इसकी इमारत भी अच्छी है। इसके मीनारों पर चढ़ कर देखने से शहर और आसपास का दृश्य अच्छी तरह से देख पड़ता है।

टीपू सुलतान का महल भी क़िले के भीतर है। उसका कुछ भाग गिरा दिया गया है और कुछ में चन्दन की लकड़ी का गोदाम है। यह महल टीपू के समय में बहुत बड़ा था। टीपू के रहने के स्थान का रास्ता बहुत तङ्ग था। उस रास्ते में चार जगह पर चार शेर ज़ञ्जीरों से बँधे रहते थे। बीच में एक दीवानख़ाना था। उसीमें बैठकर टीपू लिखता पढ़ता था। वहां उसके दीवान मीर सादिक़ के सिवा और कोई नहीं जाने पाता था। टीपू के सोने का कमरा बहुत मज़बूती से बन्द रहता था।

टीपू डरा करता था कि पलँग पर सोते समय खिड़कियों के रास्ते कोई उसे गोली न मार दे। इस लिए वह एक झूले पर सोता था। यह झूला ज़ञ्जीरों के द्वारा छत से लटका करता था और खिड़कियों से न देख पड़ता था। इस झूले पर एक नङ्गी तलवार और दो भरे हुए तमञ्चे हमेशा रक्खे रहते थे। इस सोने के कमरे में एक और दरवाज़ा था। वह टीपू के हरम से मिला हुआ था। हरम में सब ६०० स्त्रियां थीं। उनमें से ८० तो टीपू की बीबियां थीं; शेष लैांडियां वग़ैरह थीं।

क़िले के बाहर टीपू का दरियाय-दौलत नाम का एक महल है। यह एक बाग़ के बीच में है। गरमी के दिनों में टीपू साहब यहीं तशरीफ़ रखते थे। यह बहुत सुन्दर इमारत है। इसमें रङ्ग का काम बहुत ही मनोहर है। १७८० ईसवी में हैदर अली ने अङ्गरेज़ों की एक बहुत बड़ी सेना को परास्त किया था। यह लड़ाई कांजीवरम् के पास हुई थी। अंगरेज़ी सेना के नायक कर्नल बेली थे। इस लड़ाई में हैदर की जो जीत हुई थी उसका चित्र इस महल की पश्चिमी दीवार पर चित्रित था। इसका रङ्ग उतर गया था। इस लिए जब श्रीरङ्गपत्तन अंगरेज़ों के हाथ आया तब कर्नल वेलेज़ली ने फिर इसे नया करवाया। वे कुछ दिन तक इस महल में रहे भी थे। एक बार यह चित्रावली सफ़ेदी करते समय धो गई थी। परन्तु जब लार्ड डलहैासी माइसोर गये तब उन्होंने फिर से इसे रँगाया।

कुछ दूर पर लालबाग़ नाम का एक बाग़ीचा है। उसमें हैदर और टीपू की क़बरें हैं। इस मक़बरे के किवाड़े हाथी दाँत से खचित हैं। उन्हें लार्ड डलहैासी ने दिया था। इसकी सफ़ाई और देख भाल गवर्नमेण्ट के ख़र्च से होती है। टीपू की क़बर पर एक लेख पद्य में है। उसमें उसकी मृत्यु की तिथि वग़ैरह लिखी है। इसी लाल बाग़ में कर्नल बेली का भी एक छोटा सा सादा स्मारक चिन्ह है। टीपू की क़ैद में, १७८२ ईसवी में, वहीं उनकी मृत्यु हुई।



टीपू सुलतान का मक़बरा।

यदि किसीको श्रीरङ्गपत्तन देखने का अवसर हाथ लगे तो उसको कावेरी का प्रपात अवश्य

देखना चाहिए। श्रीरङ्गपत्तन से ३३ मील पर मद्दूर नाम का स्टेशन है। वहां से कावेरी का प्रपात कोई २५ मील है। वहां गाड़ी पर जाना होता है; रेल नहीं है।

कावेरी में कई टापू हैं। श्रीरङ्गपत्तन भी टापू है। एक टापू और है; उसका नाम है शिवसमुद्रम्। इसी शिवसमुद्रम् के पास कावेरी का प्रपात है। माइसोर राज्य में कावेरी की चौड़ाई सिर्फ़ ३०० से ४०० गज़ तक है। परन्तु जहां काबनी नामक नदी उसमें आ मिलती है वहां से उसकी चौड़ाई बहुत अधिक हो जाती है; और, साथही, उसका वेग भी बहुत बढ़ जाता है। शिवसमुद्रम् के पास कावेरी बहुत ही विकराल रूप धारण करती है। वहां, बाढ़ के समय, प्रति सेकण्ड २,३९,००० घन फुट पानी उससे गिरता है। जहां होकर यह बहती है वहां की भूमि विशेष करके पथरीली है। कहीं कहीं पर तो बीच में बड़ी बड़ी चटानें आ गई हैं। इस लिए इसके वेग, इसके नाद और इसके प्रवाह ने और भी भयङ्कर रूप धारण किया है।

शिवसमुद्रम् नामक टापू तीन मील लम्बा और २ मील चौड़ा है। उसके एक तरफ़ कावेरी की एक और दूसरी तरफ़ दूसरी धारा है। जहां से उसकी दो धारायें होती हैं वहां से लेकर उनके सङ्गम की जगह तक का अन्तर ३०० फुट है। जहां ये दो धारायें पृथक् हुई हैं वहां से कुछ दूर पर प्रपात है। एक प्रपात पश्चिमी धारा का है, दूसरा दक्षिणी धारा का। प्रपात की जगह पर्वत की उँचाई २०० फुट है। इसी उँचाई से कावेरी की धारायें धड़ाधड़ नीचे गिरती हैं। वर्षा ऋतु में इस नदी की धारायें ½ मील चौड़ी हो जाती हैं। उस समय पानी की इतनी इतनी चौड़ी दो धारायें २०० फुट ऊंचे से प्रलयकाल का सा गर्जन करते हुए नीचे आती हैं। जहां पर दक्षिणी धारा गिरती है वहां घोड़े की नाल के आकार का एक पाताल-गामी खड्ड है। उसके भीतर वह धारा हाहाकार करती हुई प्रवेश कर जाती है। वहां से वह निकलती है और एक बहुत तङ्ग पहाड़ी रास्ते से होकर कोई ३० फुट की उँचाई से दुबारा एक खड्ड में गिरती है। कुछ दूर में दोनों धारायें फिर मिल जाती हैं और एक रूप होकर बड़े वेग से पूर्व की ओर जाती हैं।

गरमी के मौसम में कावेरी के छोटे छोटे कोई १४ प्रपात हो जाते हैं। इस लिए उस समय उनकी शोभा क्षीण हो जाती है। उनकी विशालता और भयङ्करता वर्षा ऋतु ही में देखने लायक़ होती है। अतएव जो लोग इन प्रपातों को देखने जाते हैं वे बहुधा वर्षा ऋतु ही में जाते हैं।

एक अलौकिक घटना।

यह उस समय की घटना है जब फ़्रांस में विद्रोह फैला हुआ था; और सारे देश में भीषण कोलाहल मचा था। हर रोज़ प्राण-संहारक यन्त्र* (Guillotine) प्राण लेने को तय्यार रहता था। प्रति दिन अनेक मनुष्य, स्त्रियां और बच्चे इस रोमाञ्चकारी यन्त्र पर अपना प्राण समर्पण करते थे। उसी समय दुर्भाग्यवश जर्मनी-देश का रहनेवाला गाट फ्राइड वोल्फ़गाँग (Gottfried Wolfgong) नामक एक मनुष्य पेरिस को गया। वह जर्मनी के गाटिङ्गन (Gottingen) नामक नगर में विद्याध्ययन करता था। उसका चित्त वेदान्त की ओर बहुत अधिक झुका था। वह इस शास्त्र के अध्ययन में सर्वदा निमग्न रहा करता था। पढ़ते पढ़ते उसके स्वभाव में विलक्षण परिवर्तन हो गया। उसने पाठशाला छोड़ दी और एकान्त में कालातिपात करने लगा। किसीके पास बैठना या किसीसे बातचीत करना उसने बिलकुल ही त्याग दिया। सांसारिक विषयों से उसे घृणा हो गई। अपने देश में उसे अनेक विघ्न होने लगे; इसलिए फ़्रांस जाकर

* यह एक प्रकार का यन्त्र है, जिसके द्वारा फ़्रांस में, उस समय, विद्रोहियों और अपराधियों के प्राण लिये जाते थे।

वहां एकान्त में उसने वेदान्त शास्त्र के परिशीलन में अपना समय सार्थक करना चाहा।

इस प्रकार अपने सङ्कल्प को दृढ़ करके वह फ्रांस के लिए रवाना हुआ। जब वह पेरिस में पहुँचा तब वहां भयङ्कर विद्रोह मचा हुआ था। इस विद्रोह की ज्वाला उसे असह्य हो गई; इस लिए नगर छोड़ कर बाहर एक विद्यालय में वह रहने लगा। वहां पर वह एक कमरे के किवाड़े बन्द करके भीतर पड़ा रहता था और बहुत मनो-निवेश-पूर्वक शास्त्र का परिशीलन करता था। पर, कभी कभी वह पेरिस के प्रधान पुस्तकालय में पुस्तकावलोकन के लिए जाता था। तभी वह उस विद्यालय के बाहर निकलता था।

एक दिन, वोल्फ़गाँग, आरामकुरसी पर लेटा हुआ एक किताब देख रहा था कि उसे अकस्मात् एक महा-रूपवती नवीन-नलिनी के समान कोमलाङ्गी कामिनी का स्मरण आया। उसीके ध्यान में वह मग्न हो गया और किताब हाथ से गिर पड़ी। इतने में भगवान भास्कर भी पश्चिम-दिग्वधू का मुख चुम्बन करके लोप हो गये। जगत् अन्धकार से आच्छादित हो गया। वोल्फ़गाँग को भी निद्रा ने धीरे धीरे अपने गोद में लिया। स्वप्न में वह हरिणाक्षी फिर उसके मनोमन्दिर में आ उपस्थित हुई। सारी रात उस मोहिनी ने अनेक प्रकार के विलास-कला-कुतूहलों से उस वेदान्त-शास्त्री के शास्त्रसिद्धान्तों को शिथिल किया। वह भी उस लावण्यलता की आराधना में रात भर लगा रहा। प्रभात हुआ। मरीचिमाली ने अपनी मरीचिमाला से संसार को विभूषित किया। अन्धकार को अर्द्धचन्द्र मिला। वोल्फ़गाँग की निद्रा भङ्ग हुई। वह धीरे धीरे उठा और प्रातःक्रियाओं से निश्चिन्त होकर पेरिस के प्रसिद्ध पुस्तकालय की ओर चला।

राह में उसे रात की घटना स्मरण आती रही; परन्तु ज्योंही वह पुस्तकालय में पहुँचा और उसने पुस्तक उठाई त्योंही वह उसे भूल गया। उस दिन शाम तक उसने पुस्तकावलोकन किया। कुछ रात बीतने पर वह अपने रहने की जगह, अर्थात् उस विद्यालय, को लैाटा।

वह कुछ ही दूर गया होगा कि आकाश सहसा मेघाच्छन्न हो गया। सूचीभेद्य अन्धकार ने सारे संसार को ग्रास कर लिया। क्षणदा क्षण क्षण में अपनी प्रभा दिखला कर पथिकों को पथप्रदर्शन करने लगी। मूसलधार वृष्टि होने लगी। ऐसे दुःसमय में वोल्फ़गाँग धीरे धीरे चलता हुआ उस प्राणनाशक यन्त्र (Guillotine) के पास पहुंचा। वह राह में पड़ता था। चारों तरफ़ सन्नाटा था। वारिधारा के हाहाकार के सिवा और कोई शब्द नहीं सुनाई देता था। इतने में बिजुली बड़ी तीव्रता से चमकी और साथ ही मेघों ने प्रलय-काल का सा घोर नाद किया। वोल्फ़गाँग झिझक उठा और वहीं रुक गया। थोड़ी देर में वह फिर चलने लगा। फिर भी बिजुली ने अपनी छटा दिखलाई। इस बार बिजुली के प्रकाश में उसने देखा कि उस यन्त्र के पास एक स्त्री अकेली बैठी हुई है। उसे देखकर वोल्फ़गाँग चकित हुआ कि ऐसी आफ़त में वह वहां पर कैसे आई। बहुत साहस करके वह उस नारी के निकट गया।

ज्यों ही वह उसके पास पहुंचा त्यों ही फिर बिजुली चमकी। उसके प्रकाश में वोल्फ़गाँग ने देखा कि वह वही युवती थी जिसका दर्शन उसे स्वप्न में हुआ था। यह जान कर उसे परमाश्चर्य्य हुआ। उसके तअज्जुब की सीमा न रही। उसने उस स्त्री से पूंछा—"हे इन्दुवदनी! इस अँधेरी रात में तू यहां क्या कर रही है? इतने ज़ोर से पानी गिर रहा है। सारा संसार घोर अन्धकार में लिपटा हुआ पड़ा है। सब लोग अपने अपने घरों में दरवाज़ा बन्द किये हुए बैठे हैं। ऐसे भयानक स्थान में, ऐसे बुरे समय में, तू अकेली बैठी हुई क्या कर रही है? क्या तेरे घर द्वार नहीं है? क्या तेरा कोई नहीं है? अगर तू अपने किसी इष्ट मित्र के यहां चलना चाहे तो मैं वहां तुझे पहुंचा दूं।

स्त्री ने कहा–"हे पथिक! मेरा कोई मित्र नहीं है। मैं इस समय अपने घर पर ही हूं। मेरा घर अब मरघट है"।

यह सुनकर वोल्फ़गाँग को रोमाञ्च हो आया। उसने कहा–"अगर तेरा कोई नहीं है और तू कहीं नहीं जाना चाहती तो मैं तुझे हर्षपूर्वक आश्रय देने को तैयार हूं। जो तुझे सङ्कोच न हो तो तू मेरे साथ चल"।

स्त्रीने कहा—"मुझे कोई सङ्कोच नहीं; मैं तुम्हारे साथ चलती हूं"। इतना कहकर वह उठी और वोल्फगाँग के पीछे हो ली।

थोड़ी देर में बादल हट गये। पानी बरसना बन्द हुआ। आकाश निर्म्मल हो गया। तारकाओं ने सब ओर से चन्द्रमा को घेर लिया। वह भी उन सब का मुखावलोकन करके खिल उठा। वोल्फ-गाँग अपने रहने की जगह लौट आया। द्वारपाल ने दरवाज़ा खोला। उस रमणी को देखकर उसे तअ़ज्जुब हुआ। मगर वह कुछ बोला नहीं।

वोल्फगाँग उसे अपने कमरे में बड़े आदर के साथ ले गया। रात बहुत बीती थी। वह स्त्री अत्यन्त श्रमित थी। इस लिए बे खाये पिये उसने सोने की इच्छा ज़ाहिर की। वोलफगाँग ने उसे अपना पलङ्ग दे दिया और आप कोच पर जा लेटा।

वह पड़ा पड़ा अनेक प्रकार की बातें मन ही मन सोचने लगा और उस चन्द्राननो के प्रेमपाश में इतना बद्ध हो गया कि उसका सारा विवेक जाता रहा। वह धीरे से उठा और उस कामिनी के कण्ठ के पास पहुंचा। उसे उसने धीरे से जगाया और जगाने के अपराध को क्षमा करने की लाख लाख प्रार्थना करके उस पर अपना प्रेम प्रगट किया। उसने उससे अपने स्वप्न की सारी कथा कह सुनाई। आख़िर को उसने साफ़ साफ़ उससे प्रणय भिक्षा माँगी।

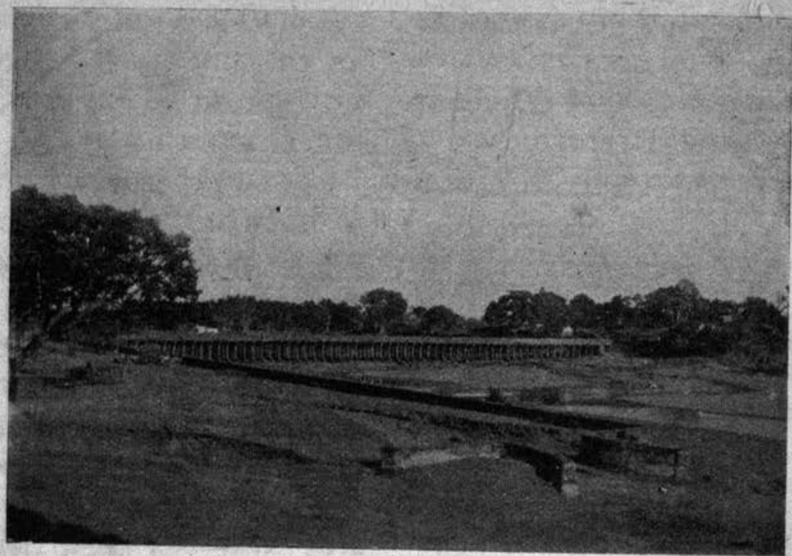
इसपर उस रमणी ने कहा—"ठीक है; मेरी भी दशा कुछ कुछ तुम्हारी ही सी है। अतएव जब हमारी दोनों की भावना एक है तब सङ्कोच को क्या आवश्यकता?"

यह सुनकर वोल्फगाँग आनन्द से मत्त हो उठा। उसने शपथपूर्वक कहा कि आज से मैं तुम्हारा हो चुका। तब उन दोनों ने गाढ़ालिंगन पूर्वक, जुदा जुदा दो हृदयों को, सचमुच ही एक कर दिया।

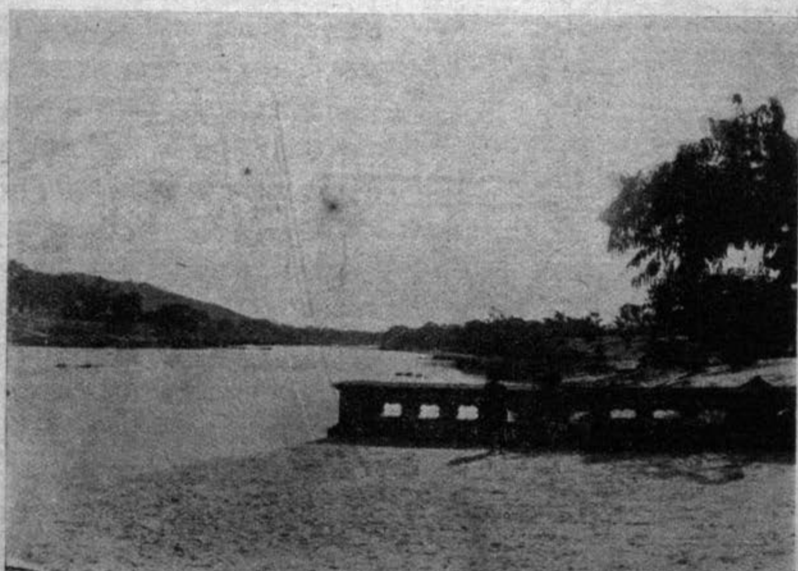
प्रातःकाल बाल-सूर्य की अरुण किरणों ने धीरे धीरे वोल्फगाँग को जगाया। वह प्रातःकालीन कार्य्योंसे निश्चिन्त होकर एक अच्छा सा मकान ढूंढने के लिए शहर को ओर चला। मकान का प्रबन्ध कर के प्रसन्न मुख वह इस इरादे से विद्यालय को लौटा कि अपनी प्रणयिनी को लेकर वह उस मकान में उसी दिन उठ जावै। परन्तु ईश्वर की लीला कुछ समझ में नहीं आती। जो वोल्फगांग कुछ घण्टे पहले नन्दनवन में विहार कर रहा था, उसी पर अकस्मात् वज़्रपात सा हुआ! जिस मृगाक्षी के शशिप्रभ आनन को देख कर उसका कुमुद-हृदय निःसीम आनन्द से विकसित हो उठा था, उसी को उसने अनन्त-निद्रा में निमग्न पाया!

वोल्फगाँग उसके पास बैठा। उसे प्रणयपूर्वक स्पर्श किया। अनेक मधुर वाक्यों से उसे उठाने का यत्न किया। परन्तु क्या कोई अनन्त-निद्रा में निमग्न हो कर भी उठा करता है? उसे प्राणहीन जानकर वोल्फगाँग करुणा करके रोने लगा। उस के आर्तनाद और विलाप-वाक्यों को सुन कर बहुत से आदमी वहां इकट्ठे हो गये। कुछ देर में पुलिस भी आई।

एक कांस्टबिल उस पलङ्ग के बहुत निकट आया जिस पर उस कामिनी का निश्चेष्ट शरीर पड़ा था। उसे उसने बड़े ग़ौर से देखा और आश्चर्य प्रगट करते हुए वह वहां से सहसा हट गया। यह देख कर वोल्फगाँग ने उस कांस्टबिल से उसकी इस चेष्टा का कारण पूँछा। उसने काँपते काँपते कहा—"इस स्त्री को तो कल प्राणदण्ड मिल चुका था। यह यहां पर कैसे आई?"



वेलिङ्गटन का पुल।



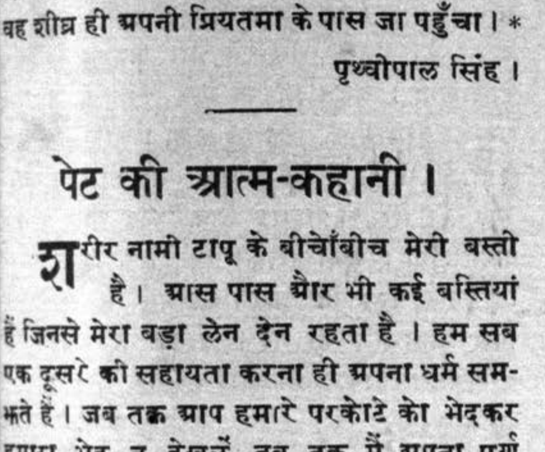
कावेरी नदी।

यह सुनते ही सब लोग तअज़्जुब में आ गये। और वोल्फगाँग की शोकाग्नि और भी अधिक प्रबलता से भभक उठी। उसकी हालत यहां तक ख़राब हो गई कि कुछ दिनों में वह पागल हो गया। इस लिए वह एक पागलख़ाने में भेजा गया। वहां से वह शीघ्र ही अपनी प्रियतमा के पास जा पहुँचा। *

पृथ्वीपाल सिंह।

पेट की आत्म-कहानी।

शरीर नामी टापू के बीचोंबीच मेरी बस्ती है। आस पास और भी कई बस्तियां हैं जिनसे मेरा बड़ा लेन देन रहता है। हम सब एक दूसरे की सहायता करना ही अपना धर्म समझते हैं। जब तक आप हमारे परकोटे को भेदकर हमारा भेद न देखलें तब तक मैं अपना पूर्ण वृत्तान्त नहीं समझा सकता। तो भी आज आप को दो चार बातें कहनी हैं। हमारे यहां ऋतु सदा मनोभाविनी बनी रहती है; सर्दी तो कभी पड़ती ही नहीं; और न ख़ुश्की आती है। मेरे एक गाँव



का नाम "आमाशय" है जो ठाकुर "पाचन"-सिंह जी की ज़मींदारी का सदर-मुक़ाम है। ज़मींदारी भर में इस गाँव से बड़ा और कोई मौज़ा नहीं है। इसी गाँवसे लगा हुआ "यकृत"-गिरि नाम का एक बड़ा पहाड़ है जहां से "पित्त"-गङ्गा निकल कर "आमाशय" से कुछ ही दूर आगे "पाचन"-सिंह की ज़मींदारी में आ बहती है।

"आमाशय" से नीचे एक और पहाड़ी है जिस को अङ्गरेज़ लोग "पेंक्रियास" कहते हैं। "पित्त"-गङ्गा की भांति इससे भी एक झरना आता है। बाबू "रक्त"-नाथ की ज़मींदारी भी इसी टापू में है; और "हृदय"-पुर गांव उनका सदर मुक़ाम है। इस गाँव में रात दिन भूचाल सा हुआ करता है; एक घड़ी भी शान्ति नहीं देखी जाती। गांव गूञ्जता रहता है। मैं "आमाशय" गाँव की बात कर रहा था। इस टापू भर को भोजन पहुँचाने का काम ठाकुर "पाचन" सिंह की ज़मींदारी में होता है जिस का बड़ा कारख़ाना "आमाशय" में है। संसार भर के बड़े बड़े विद्वानों ने यह चेष्टा की कि इस टापू को रसद पहुंचाने का कोई और भी उपाय हो; परन्तु इस घड़ी तक "आमाशय" के बिना और कोई उपाय किसीको नहीं सूझा है। न जाने, कहां कहां से माल इकट्ठा होकर इस टापू के पास लाया जाता है और "मुख"-पुरी में आकर उतरता है। यहां चक्कियां (दांत) लगी हुई हैं; वे उस माल को एक प्रकार के जल से भिगो भिगो कर पीसती हैं। माल को जांच के लिये यहां एक परीक्षक है जिसका नाम हमने "रसना"-शाह सुना है। वह माल को ख़ूब चख कर तब आगे को रवाने करता है। फिर वह एक नहर द्वारा "आमाशय" में पहुँचता है। यहां पर माल की फिर जाँच होती है। यदि वह टापू के स्वास्थ्य के लिये उपयोगी नहीं होता तो "आमाशय" में नहीं रहने पाता; एक दम टापू से बाहर गिर पड़ता है। "आमाशय" की भूमि पर बसनेवाले लोग देखने में बहुत ही छोटे हैं; परन्तु रसायनविद्या में वे बड़े चतुर हैं। वे अपने अपने घर से एक तेज़ाब (Gastric juice) लाते हैं जिसके द्वारा "मुख"-पुरी से आया हुआ सब माल

* Washington Irving के Tails of a Traveller की एक आख्यायिका का भावार्थ।

पकाया जाता है। ठाकुर "पाचन" सिंह जी की मुख्य आज्ञा ते यह है कि उन्होंने "मुख" पुरी में जो चक्कियां लगाई हैं वे पहले माल को ख़ूब महीन करें और खारी झरने (थूक की नालियाँ) के जल से उसे पनीला बनाकर तब "आमाशय" को भेजें। परन्तु वहां कभी कभी ऐसी जल्दी की जाती है कि जैसे का तैसा माल इनके सिर पटका जाता है। उस दशा में इन लोगें को बड़ा कष्ट होता है। गाँव भर में खलबली पड़ जाती है और कुछ देर सब डर कर बैठ जाते हैं। अनन्तर बड़े परिश्रम से वे उसे पाचन योग्य बनाते हैं; परन्तु फिर कई दिन तक काम करने योग्य नहीं रहते। क्योंकि इन लोगें का तेज़ाब (गैस्ट्रिक जूस) तभी गुण करता है जब पहले चक्की (दाँत) अपना पूरा काम करें। "आमाशय" से माल तैयार होकर एक चक्करदार नाली (छोटी आँतों) में छोड़ दिया जाता है। उसमें "पित्त"-गङ्गा तथा पैंक्रियास के झरने का जल (पैंक्रियाटिक जूस) मिलकर उस माल को टापू के भोजन-योग्य बना देते हैं। ज्योंहीं नाली में माल पहुंचता है, टापू भर के निवासी अपने अपने हिस्से के लिये हरकारे भेज देते हैं, जो स्वामी की रुचि के अनुसार भोजन ले जाते हैं। नाली के नीचे केवल वही अंश (मल) रह जाता है जो किसीके काम का नहीं। वह प्रतिदिन बाहर फेंक दिया जाता है। महेन्दुलाल गर्ग।

हुएन-संग।

[२]

[पूर्व प्रकाशित से आगे]

इस घटना के उपरान्त हुएन-संग अपने पण्डे के साथ आगे बढ़ा। वह दो ऊँची चट्टानों के बीच में से होकर वेग के साथ बहते हुए एक झरने के पास आया। यहीं पर एक ओर चट्टान में उसको एक द्वार दिखाई पड़ा जो तुरन्त खुल गया। इसके भीतर घोर अन्धकार था। पर हुएन-संग ने इसमें निर्भयतापूर्वक प्रवेश किया और वह पूर्व की ओर बढ़ा; फिर पचास क़दम पीछे हट कर उसने अपनी आराधना आरम्भ की। उसने सौ दण्ड प्रणाम किये; परन्तु कुछ दिखाई न पड़ा। इस पर वह व्यतीत दुष्कर्म्मों के कारण अपने को बहुत धिक्कारने और करुणा के साथ रोने लगा। बहुत प्रार्थना और विनय के उपरान्त उसको दीवार पर एक धुँधला प्रकाश दिखलाई पड़ा, जो थोड़ी ही देर के बाद फिर लोप हो गया। हर्ष और प्रेम से गद्गद होकर वह फिर प्रार्थना करने लगा। पुनः उसको प्रकाश की एक ज्योति दिखलाई पड़ी जो विद्युत् की नाईं प्रगट होकर फिर अन्तर्धान हो गई। श्रामण ने अबकी बेर उत्साहित होकर प्रतिज्ञा की कि जब तक मैं भगवान बुद्ध की स्पष्ट छाया का दर्शन न पाऊँगा तब तक इस स्थान को कदापि परित्याग न करूँगा। दो सौ बार जप के समाप्त होते हो वह गुफा सहसा प्रकाश से जगमगा उठी और भगवान तथागत की एक स्वच्छ श्वेतवर्ण छाया दीवार पर इस तरह दिखाई पड़ी जैसे मेघों के यकायक हट जाने से प्रभाकर का दीप्तिमान् मण्डल निकल आता है। उसके मुख से एक अलौकिक तेज छिटक रहा था। हुएन-संग आश्चर्य्य-चकित हो गया और स्तब्ध नेत्रों से उसी ओर देखने लगा। जब सन्यासी का ध्यान भङ्ग हुआ तब उसने छः आदमियों को गुफा के भीतर बुलाया और अग्नि प्रज्वलित करके धूप देने की आज्ञा दी। किन्तु अग्नि का प्रकाश होते ही जब वह छाया लोप होने लगी तब आग बुझा दी गई। पाँच आदमियों को तो बुद्ध की छाया का दर्शन हुआ, पर छठवें को नहीं। वह वृद्ध मनुष्य जो हुएन-संग के साथ आया था, यह सब रहस्य देखकर बोला, "स्वामी! बिना धर्म्म और सङ्कल्प की दृढ़ता के आपको यह लीला कदापि न दिखाई पड़ती"।

यह तो पेशावर की बात हुई। पैलुश नामक नगर के निकट हमारा यात्री एक ऊंचे पहाड़ पर गया। वहां एक नीले शिलाखण्ड में भीमा देवी (दुर्गा) की मूर्त्ति खुदी थी। दूर दूर से लोग यहां दर्शन के लिए आते थे। पर्वत के नीचे एक महेश्वर का मन्दिर था। यहां से फिर वह सलातूर गया जो प्रसिद्ध वैयाकरण पाणिनि की जन्मभूमि थी।

नगरहार और गान्धार दोनों देश उस समय कपिश (हिन्दूकुश के पास) के राजा के आधीन थे।

इन स्थानों को देखता भालता, सिन्धु नदी को पार करता हुआ हमारा यात्री काश्मीर की ओर बढ़ा। वह लिखता है, कि—"मार्ग पथरीले और ढालुये हैं; पर्वत और घाटियाँ अँधेरी और सुनसान हैं। कभी हम लोगों को रस्सी और कभी लोहे की ज़ञ्जीर पकड़ कर दर्रों को पार करना पड़ता है"। काश्मीर राज्य के अन्तर्गत तक्षशिला और सिंहपुर में वह पहुँचा। सिंहपुर में उसे श्वेताम्बर और दिगम्बर जैन दिखाई पड़े। काश्मीर के सम्बन्ध में हमारा यात्री कनिष्क राजा का भी नाम लेता है जो ७८ ई० में काश्मीर में राज्य करता था। जिस रास्ते हुएन-संग जाता, लोग उसकी ओर उँगली उठाते और कहते—"यह मनुष्य हमारे पूर्व नृपति (कनिष्क) के देश का निवासी है"। चीनी लोग इस देश में शफ़तालू और नाशपाती लाये थे। इससे उस समय लोग "शफ़तालू को चीनानि और नाशपाती को चीन-राजपुत्र कहते थे।"

काश्मीर से शतद्रु और शूरसेन (मथुरा) राज्य में होता हुआ यह विदेशी थानेश्वर आया, जिसकी राजधानी कुरुक्षेत्र के निकट थी। इस भूमि के सम्बन्ध में वह महाभारत की लड़ाई का ज़िक्र करता है और लिखता है, "यहां भयङ्कर संग्राम हुआ था; तब से आज तक यह मैदान योद्धाओं की हड्डियों से ढका पड़ा है"।

हरद्वार में आकर हमारे यात्री ने गङ्गा का दर्शन किया। "भारतवर्ष के लोग इसे गङ्गाद्वार कहते हैं। यहां हज़ारों आदमी सदैव दूर दूर से आकर स्नान करने के लिए एकत्रित रहते हैं।" यह उसका कथन है।

ब्रह्मपुर (गढ़वाल और कमाऊं) हो कर वह भारतवर्ष की विख्यात राजधानी कान्यकुब्ज में आया। यहां का राजा उस समय महा प्रतापी द्वितीय शिलादित्य था। यह वही शिलादित्य है जो रत्नावली का रचयिता हर्षवर्धन वा श्रीहर्ष के नाम से प्रसिद्ध है। उत्तरी भारतवर्ष के सब राजा इसके आधीन थे। इसकी प्रवृत्ति बौद्धधर्म्म की ओर थी। इसने पशुओं के वध का निषेध किया; जगह जगह स्तूप बनवाये, और औषधालय स्थापित किये। हर पाँचवें बरस बड़े समारोह के साथ वह एक उत्सव करता था जिसमें देश देश के राजा और देश देश के विद्वान् और गुणी बुलाये जाते थे। जिन दिनों इस उत्सव की तय्यारी हो रही थी हमारा यात्री उस समय कामरूप के ब्राह्मण राजा कुमार-भास्कर वर्म्मा के साथ प्रसिद्ध विद्यापीठ नालन्द में ठहरा था। शिलादित्य ने कुमार के पास यह आज्ञापत्र भेजा—"मैं चाहता हूं कि आप तुरन्त उस विलक्षण श्रामण के साथ, जिसे आप ने नालन्द के मठ में टिकाया है; आइए"। आज्ञा पाते ही हुएन-संग शिलादित्य के यहां लाया गया। शिलादित्य ने यात्री से उसकी देश-सम्बन्धी बहुत सी बातें पूछीं और उनका उत्तर पाकर वह बहुत प्रसन्न हुआ।

हुएन-संग भी इस बड़े उत्सव में सम्मिलित हुआ। इसमें बुद्धदेव की प्रतिमा को स्वयं शिलादित्य महाराज अपने कन्धे पर लेके निकले। २१ दिन तक ब्राह्मणों और श्रामणों को समानरूप से भोज दिया गया। बौद्धों और वैदिकों में मित्रभाव से शास्त्रार्थ हुआ। महाराज ने सोना, चाँदी, मोती आदि लुटाया। इस वर्णन से जाना जाता है कि ७वीं शताब्दी में हिन्दू और बौद्ध परस्पर प्रेमभाव से रहते थे। राजा दोनों धर्म्मों पर समान आदर की दृष्टि रखता था।

अयोध्या, हयमुख इत्यादि नगर होता हुआ हमारा यात्री प्रयाग पहुंचा। वहां उसे बौद्धमत का कुछ भी आदर न देख पड़ा। हुएन-संग उस अक्षय-बट का उल्लेख करता है जिसका दर्शन आज भी लाखों यात्री प्रयाग में जाकर करते हैं। आगे चलकर वह लिखता है—"दोनों नदियों के सङ्गम पर, नित्य, सैकड़ों लोग नहाते और प्राणत्याग करते हैं। इस देश के लोग समझते हैं कि जो स्वर्ग में जाना चाहे वह (यहां आ कर) एक चावल खाकर व्रत करे और फिर अपने को जल में डुबो दे"। नदी के बीच में एक ऊंचा चबूतरा बना था, जिस पर खड़े हो कर लोग डूबते सूर्य्य की ओर, जब तक वह अस्त न होता, ताकते थे।

कौशाम्बी, श्रावस्ती, कपिलवस्तु (बुद्ध का जन्मस्थान) और कुशीनगर (यहां पर बुद्ध को निर्वाण हुआ था) होता हुआ वह पो-लो-ना-ई अर्थात् बनारस में आया। यहां के मृगाराम और स्तूपों का उसने बड़े विस्तार के साथ वर्णन किया है।

उत्तरी भारतवर्ष के प्रधान प्रधान नगरों में घूमता घामता वह बौद्धों के केन्द्र-स्थान मगध देश में आ पहुँचा। यहां पर वह पांच वर्ष रहा। यहीं पर उसको अपने अभिलषित कार्य्य को पूरा करने का समय मिला; यहीं पर आकर उसको परोपकार साधन का मार्ग सुलभ हुआ। नालन्द के मठ में रहकर उसने उस समय के विख्यात आचार्य्यों से संस्कृत के मूलग्रन्थों को पढ़ा। बहुत से संस्कृत ग्रन्थों का, जिनका नाम तक उसके देशवासियों ने नहीं सुना था, उसने संग्रह किया। यहां उसकी सब शंकायें दूर हुईं; उसके चित्त को शान्ति मिली।

यहां से चलकर वह हिरण्य-पर्वत (मुँगेर), चम्पा (अङ्ग की प्राचीन राजधानी), पुंड्र, समतत, ताम्रलिप्ति, कर्ण सुवर्ण और उड़ (उड़ीसा) होता हुआ दक्षिण की ओर बढ़ा। कान्योध, कलिङ्ग, धनकटक, चोल, द्राविड़ (काञ्चीपुर) आदि दक्षिण के राज्यों से होकर वह मलाबार के किनारे आ पहुँचा। वहां से भारतवर्ष की पूरी परिक्रमा करते हुए वह फिर उत्तर की ओर चला। मार्ग में उसने कोंकन और महाराष्ट्र देश को देखा। महाराष्ट्र देश के निवासियों के विषय में वह लिखता है—"अपने उपकारी के वे कृतज्ञ हैं, पर अपने शत्रु के लिए दुर्दमनीय। यदि वे तिरस्कृत किये जाते हैं तो बदला लेने के लिए अपने प्राण तक को कुछ नहीं समझते। उनका राजा जाति का क्षत्रिय है; उसका नाम पुलकेशी है। इस समय शिलादित्य ने पूर्व से पश्चिम तक की सब जातियों को विजय किया है; पर केवल इस देश के लोगों ही ने उसकी आधीनता नहीं स्वीकार की है"। इसी पुलकेशी के वंशधर ने हज़ार वर्ष बाद भी दिल्लीपति औरङ्ग-ज़ेब के नाकोदम कर डाला।

मालवा, गुजरात, सिन्ध आदि देशों में घूमधाम कर हमारा यात्री फिर उत्तरी हिन्दुस्तान में आया, और मगध देश को लौटकर अपने पुराने मित्रों के साथ कुछ दिन तक रहा।

इस देश की सातवीं शताब्दी की रीति रवाज के विषय में भी इस यात्री ने बहुत कुछ लिखा है। जन-साधारण के पहिरावे के विषय में उसने लिखा है कि बने और सिले हुए वस्त्रों का यहां व्यवहार नहीं था*। "स्त्रियों का पहिरावा ज़मीन तक लटकता है। वे अपने कन्धों को भलीभाँति आवृत रखती हैं। वे सिर पर एक छोटा सा केश-गुच्छ रखती हैं और बाक़ी बाल बिखराये रहती हैं। पुरुष अपने सिर पर फूलों की माला और रत्नों से गुथी हुई टोपियां पहनते हैं।"

ब्राह्मण और क्षत्रिय अपना वस्त्र बहुत स्वच्छ रखते थे। भोजन के पहले सब लोग स्नान वा अङ्ग-प्रक्षालन करते थे। काठ वा पत्थर के बर्त्तन व्यवहार के उपरान्त फेंक दिये जाते थे। भोजनोपरान्त लोग खरिका करते, और हाथ मुँह धोते थे।

* इस विषय पर मेरा "प्राचीन भारतवासियों का पहिराव" शीर्षक लेख देखिए—सरस्वती भाग ३, संख्या १२।

बहुत बरसों के उपरान्त इस यात्री ने अपनी जन्मभूमि की सुध ली। वह फिर पञ्जाब, काबुलिस्तान और बलख़ होता हुआ आक्सस नदी के किनारे पहुँचा। काशग़र, यारक़न्द, और खुतन आदि मध्य एशिया के मुख्य मुख्य नगरों में कुछ काल रह कर अन्त में सोलह वर्ष की लम्बी यात्रा के उपरान्त, संस्कृत ग्रन्थों के बोझ से लदा हुआ, वह फिर अपनी प्यारी चीन की भूमि में जा पहुँचा। मनुष्य के लिए, यदि वह परिश्रम का सहारा ले, तो कोई काम कठिन नहीं है।

उसकी ख्याति दूर दूर तक फैल गई। चीननरेश ने उसका स्वागत बड़े उत्साह और समारोह के साथ किया। उसका राजधानी में प्रवेश बड़ी धूमधाम और तय्यारी से हुआ। सड़कों पर दरियां बिछ गईं; फूलों की वर्षा होने लगी; पताका फहराने लगीं। मार्ग के दोनों ओर सैनिक और कार्य्याधिकारी लोग स्वागत के लिए पंक्तिबद्ध खड़े किये गये। बौद्ध सन्यासियों का एक दल धीरे धीरे अगवानी के लिए आगे बढ़ा। विमान जो इस धार्म्मिक विजय के उपलक्ष में निकाले गये वे निराले ही ढङ्ग के थे। सब से आगे वाले पर तो बुद्ध के शरीर की थोड़ी सी राख थी; उसके पीछे गौतम बुद्ध की एक स्वर्णप्रतिमा; तिसके पीछे एक वैसी ही चन्दन की प्रतिमा; फिर महात्मा तथागत की एक अन्य मूर्त्ति; तदुपरान्त एक चाँदी की प्रतिमा; फिर एक स्वर्णमूर्त्ति; तदुपश्चात् शाक्य मुनि की उपदेश देते समय की मूर्त्ति; और इन सबके अन्त में ५२० जिल्दों में ६५७ धर्म्मग्रन्थ थे। निस्सन्देह यह महानुभाव ऐसे ही सम्मान के योग्य था। ऐसे धर्म्मवीर साहसी पुरुष का यदि उचित रीति से आदर न किया जाता तो घोर पाप होता।

चीन सम्राट ने इस यात्री का फ़ीनिक्स नामक राजमन्दिर में स्वागत किया, और उसको बुद्धि, धर्म्मशीलता और उसके परिश्रम से प्रसन्न हो कर उसे अपने राज्य में एक ऊंचा पद देने की अभिलाषा प्रगट की। पर हुएन-संग ने इसे अस्वीकार किया और कहा—"राज्य-शासन का मूल-मन्त्र कनफ्यूशियस की शिक्षा है"। उसने अपने जीवन का शेष भाग भगवान बुद्ध ही की आज्ञा-पालन में बिताना उचित समझा। इस पर चीननरेश ने उसको अपना भ्रमण वृत्तान्त लिखने का अनुरोध किया, और एक सुन्दर मठ प्रदान किया, जहां एकान्त में अपने अवकाश का समय उसने उन ग्रन्थों के अनुवाद में लगाया जिन्हें वह भारतवर्ष से अपने साथ लाया था। कहते हैं कि उसका भ्रमण-वृत्तान्त* सि-यू-को-तो बहुत शीघ्र प्रकाशित हो गया, पर संस्कृत ग्रन्थों के अनुवाद में उसके जीवन का समस्त शेष भाग लग गया। बौद्ध सन्यासियों की सहायता से उसने ७४० ग्रन्थों का १३५० जिल्दों में अनुवाद किया।

इसका स्वभाव बड़ा ही सरल था। इसे अपने ज्ञान का कुछ भी अभिमान न था; यह सदैव यही कहा करता कि मेरा सब ज्ञान बुद्ध और बोधिसत्त्वों ही का प्रसाद है।

जब उसने अपना मृत्युकाल निकट जाना तब उसने अपनी सारी सम्पत्ति दरिद्रों में बाँट दी और अपने मित्रों को बुला भेजा जिसमें वे आकर उसके अपवित्र शरीर से विदा लें। उसने उनकी ओर देखकर क्षीण स्वर से कहा, "मेरी इच्छा है कि जो कुछ फल मेरे अच्छे कर्म्मों का हो वह दूसरे लोगों को मिले। मैं फिर उनके साथ भाग्यमानों के लोक में जन्म पाऊं; आगामि बुद्ध की सेवा करूं जो दया और प्रेम से पूर्ण है। जब जब मेरा पुनर्जन्म हो मैं बुद्ध का आज्ञानुवर्त्ती होऊं और अन्त में सब से उच्च और पूर्ण-ज्ञान तक पहुँचूं"।

हुएन-संग ने इस अपवित्र शरीर को ६६४ ई० में छोड़ा—ठीक उसी समय जब इस्लाम की

*इस में उसने अपनी यात्रा का सब हाल लिखा है। इसका अनुवाद योरोपीय भाषाओं में हो गया है। भारतवर्ष के इतिहास का बहुत कुछ पता इस पुस्तक से लगता है। यदि इसका अनुवाद हिन्दी में न हुआ तो यह हमारे लिए बड़े लज्जा की बात होगी।

रुधिराप्लावित विजय-पताका पूर्व की ओर बढ़ रही थी और क्रिश्चियन धर्म्म का सञ्चार योरप में हो रहा था।

भारतवर्ष के इतिहास के जाननेवाले जब तक इस पृथ्वी पर विद्यमान रहेंगे तब तक इस धर्म्म-परायण चीनी यात्री का नाम आदर के साथ लिया जायगा।

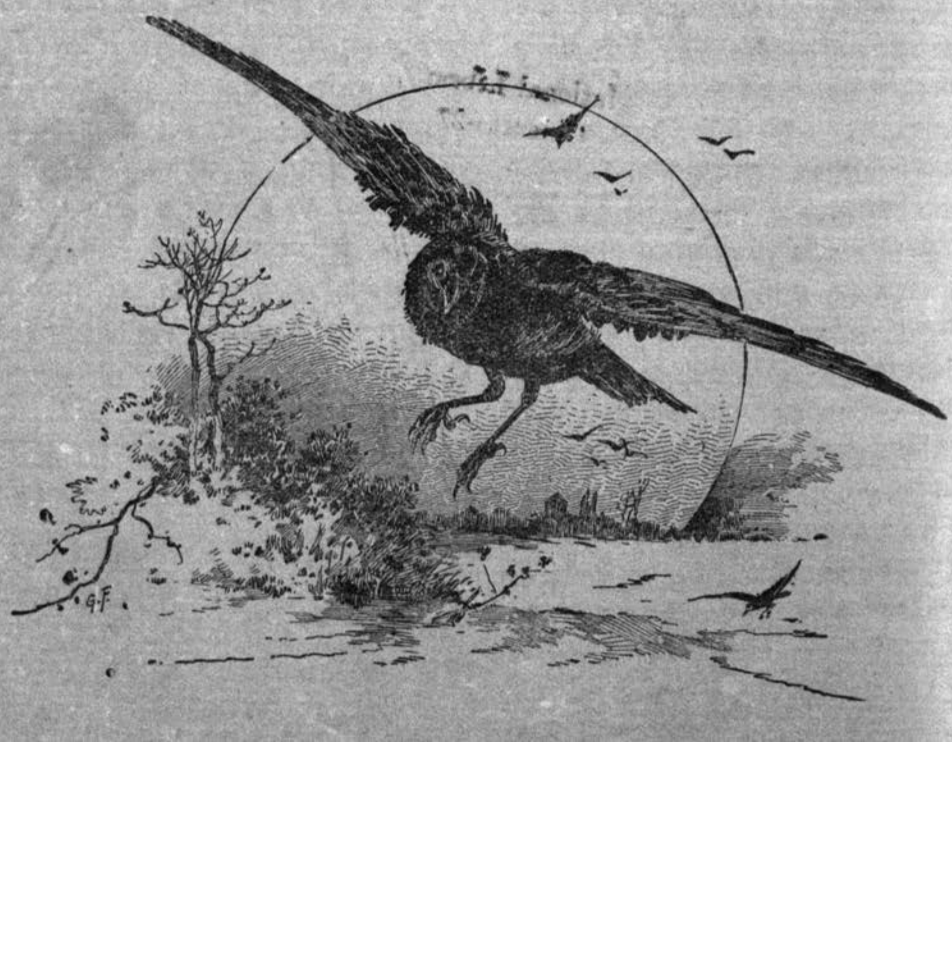
रामचन्द्र शुक्ल।

मनोरञ्जक श्लोक।

वक्त्रे वल्गाप्रकर्षः समरभुवि
तव प्राणरक्षापि दैवात्
स्वेच्छाचारो न चास्ते नहि भवति
तथा भारवाहो नितान्तम्।
इत्युक्तोऽश्वः खरेण प्रहसित-
वदनो मूक एवावतस्थे
तस्माज्ज्ञात्या महान्तोऽधमजन-
विषये मैानमेवाश्रयन्ते॥

भावार्थ—"मुँह में ते आपके खिँची हुई लगाम लगी है; लड़ाई के वक्त, खेत में, ईश्वर ही आपके प्राण बचाता है; इच्छानुसार आप घूम फिर भी नहीं सकते; बोझा भी आपसे ख़ूब नहीं ढुलाया जाता—फिर आप किस मरज़ की दवा हैं"? गर्दभाचार्य्य के मुखकमल से यह वक्तृता सुन कर घोड़ा कुछ न बोला। ज़रा हँस भर दिया। अधमों को शेख़ी मारते या दूसरों की निन्दा करते देख महात्माजन मैान ही रहना अच्छा समझते हैं।

पाण्डेय लोचनप्रसाद।





करुणा और निष्ठुरता ।

राजा रविवर्म्मा कृत ।

सरस्वती
सचित्र मासिक पत्रिका।
१९०४

भाग ५] अक्टोबर, १९०४ [संख्या १०

आवश्यक सूचना।

समाचार-पत्र और पुस्तकों के सम्पादकों से, सरस्वती के लेखक और पाठकों से, तथा उन महाशयों से जो हमसे पत्र-व्यवहार रखते हैं, यह निवेदन है कि झांसी छोड़ कर हम कानपुर चले आये हैं। अतः बदले के समाचारपत्र, समालोचना के लिए पुस्तकें, तथा पत्र इत्यादि अब हमारे पास जुही, कानपुर, के पते से आने चाहिएं।

सम्पादक, सरस्वती।

विविध विषय।

प्रसिद्ध चित्रकार राजा रविवर्म्मा से प्रायः सभी पाठक परिचित होंगे। इनके चित्रों का आदर प्रतिदिन बढ़ता ही जाता है। कुछ दिन हुए उन्होंने "करुणा और निष्ठुरता" नामक एक नया चित्र बनाया है। इसका दूसरा नाम "रानी और व्याध" भी है। इस बार यही सरस्वती के आरम्भ में दिया गया है। इसकी कथा इस प्रकार है—

एक दफ़ा एक राजकन्या अपने उद्यान में बैठी हुई वीणा बजा रही थी। जिस पेड़ के नीचे वह बैठी थी उसी पर पक्षियों का एक जोड़ा भी बैठा। वह, उस समय, प्रेमासक्त था। ऐसे समय में उस जोड़े को एक निष्ठुर व्याध ने देखा। उसने उस पर शर-सन्धान किया। धनुष की प्रत्यञ्चा से बाण छूटा। निशाना ख़ाली नहीं गया। उन दो में से एक पक्षी के शरीर को उसने भेद कर दिया। छिदे हुए बाण समेत वह पक्षी वृक्ष के नीचे आ गिरा और उस राज-कुमारी के पैरों के पास छटपटाने लगा। कुमारी ने उसे तत्काल उठा लिया और धीरे धीरे उसके शरीर से बिधे हुए बाण को निकाला। फिर उस घायल पक्षी को गोद में रख कर, दयार्द्र हृदय होती हुई, वह, उस पर अपना करकमल फेरने और वेदना निवारण करने की

चेष्टा करने लगी। शिकार के उठाने के लिए, उसी समय, वह धनुर्धारी व्याध वहां पर आ कर उपस्थित हुआ। परन्तु राजकुमारी के सौन्दर्य, रक्तिमारञ्जित आकर्ण-नेत्र और अपने धन्वा से भी अधिक वक्रिमा के धारण करनेवाली भ्रू-लता के देख कर वह वहीं काष्ठवत् खड़ा रह गया। इस समय राजकुमारी के अन्तःकरण में उस घायल पक्षी की ओर जो करुणा और उस व्याध की ओर जो निर्भर्त्सना-व्यञ्जक निष्ठुरता उत्पन्न हुई वही चित्रकार ने इस चित्र में दिखलाई है। ऐसे विसदृश भावों का मेल एक ही साथ व्यक्त करना राजा रविवर्म्मा ऐसे अद्भुत चित्रकार ही का काम है।

* * *

कानपुर में १८५७ ईसवी की याद दिलानेवाला और याद आने पर हृदय के दहलानेवाला एक कुवाँ है। नीचे उसीका चित्र है। इस कुवें से सम्बन्ध रखनेवाला इतिहास, संक्षेप से, यह है—



४ जून १८५७ को ३००० सिपाहियों ने कानपुर में विद्रोह मचाया। वे बाग़ी हो गये और बाजीराव पेशवा के दत्तक पुत्र धोंडोपन्त उर्फ़ नाना साहब से, जो बिठूर में रहते थे, मिल गये। २६ जून तक ३०० गोरे, इन ३००० सिपाहियों और नाना साहब की फ़ौज से लड़ते रहे। २१ दिन में २५० गोरे मारे गये।

२६ जून को नाना साहब ने अंगरेज़ों को इलाहाबाद भेज देने का अभय वचन दिया। २७ को प्रातःकाल स्त्रियां और बच्चों समेत सब अंगरेज़ गङ्गा के सती-चौरा नामक घाट पर पहुँचाये गये। जब वे नावों पर सवार हो चुके तब बिगुल बजा। मल्लाह नावों से कूद पड़े। नाना साहब ने "बिज़न" बोल दिया। तोपें और बन्दूकें चलने लगीं। नावों पर जो छप्पर थे जल उठे। उनके साथ जो लोग घायल और बीमार थे वे भी जल गये। जो पुरुष और स्त्रियां गङ्गा में कूद पड़ी थीं उनका काम विद्रोहियों ने जल के भीतर घुस कर तमाम कर दिया। अब नाना को कुछ दया आई। पत्थर पसीज उठा। वज्र ने मृदुत्व धारण किया। स्त्रियों के न मारे जाने का हुक्म हुआ। १२५ स्त्रियां, जिनमें से कुछ घायल थीं और कुछ डूबने से बचाई गई थीं, बीबीगढ़ नामक स्थान में पहुँचाई गई।

सतीचौरा घाट से एक नाव आगे बढ़ गई। उस पर जो लोग थे वे ३६ घण्टे तक उसे बहा ले गये। जब वे शिवराजपुर के पास पहुँचे तब विद्रोहियों ने उनको घेर लिया। यह देखकर ११ आदमी उससे उतर पड़े और बड़ी बहादुरी से उन्होंने विद्रोहियों को भगा दिया। परन्तु तब तक वह नाव आगे निकल गई। इन ११ में से सिर्फ़ ४ आदमी बचे। इनमें से १ या २ बहते हुए जब हमारे जन्मस्थान दौलतपुर के पास पहुँचे, तब वे गङ्गा से बाहर निकाल लिये गये और मुरारिमऊ के राजा के यहां पहुँचाये गये। राजा साहब ने उनकी बड़ी ख़ातिरदारी की और आराम से उन्हें अंगरेज़ी पड़ाव में भेज दिया। इस उपलक्ष्य में उनको बहुत सा इलाक़ा मिला।

जो नाव आगे निकल गई थी वह कुछ दूर पर पकड़ी गई और उस पर जो ८० मनुष्य थे वे नाना साहब के यहां लाये गये। इनमें से जितने पुरुष थे, सब, नाना साहब के हुक्म से, गोलियों का निशाना हो गये। स्त्री और बच्चे बीबीगढ़ भेज दिये गये, जहां १२५ स्त्रियाँ पहले से रक्खी गई थीं।

इस दारुण सम्वाद को सुन कर अंगरेज़ राज का ख़ून उबल उठा। जुलाई के आरम्भ में जनरल हैवलाक ने कानपुर पर चढ़ाई की। यह सुन कर हत्यारे नाना ने अंगरेज़ स्त्रियों और बच्चों को हलाल करने का हुक्म दिया। सुनते हैं, सिपाहियों ने गोलियां तो छोड़ीं, परन्तु स्त्री-वध-रूपी घोर पाप से बचने के लिए उनका निशाना चूकने लगा। यह देख कर नाना ने बूचरों को बुलवाया। उन्होंने तलवार और बड़े बड़े छुरों से इस नर-पिशाच की आज्ञा पालन की। मरी और कुछ अधमरी मेमें और कुछ बच्चे जीते ही पड़ोस के एक कुवें में फेंक दिये गये। इसी कुवें पर एक इमारत बनाई गई है। उसीका यह चित्र है।

हत्याकारी नाना, तांतिया टोपी और दूसरे विद्रोहियों को, इस चाण्डाल कर्म्म के लिए जो दण्ड मिला, वह सर्वथा उपयुक्त था।

इस कुवें में कोई २०० लाशें भरी गई थीं। कुवें के ऊपर जो इमारत है उसके बीच में एक मूर्ति है। यह सङ्गमरमर की है। इसके दोनों हाथ एक दूसरे के ऊपर होकर छाती पर रक्खे हुए हैं। मूर्ति इस तरह से बनाई गई है मानो वह ईश्वर से यह कह रही है कि—

"राज़ी हैं हम उसीमें जिसमें तेरी रज़ा है"। सामने की मेहराब के ऊपर खुदा है—

These are they which came out of Great tribulation.

कुवें का जो घेरा है उस पर दीवार बनी है। इस दीवार पर यह खुदा हुआ है—

Sacred to the perpetual memory of a Great Company of Christian people, chiefly women and children, who, near this spot were cruelly murdered by the followers of the rebel Nana Dhondu Pant, of Bithur, and cast, the dying with the dead, into the well below, on the fifth day of July, MDCCCLVII.

सुखदेव मिश्र।

कविता के लिए प्रतिभा की आवश्यकता होती है। बिना प्रतिभा के कोई कवि नहीं हो सकता। प्रतिभावान् पुरुष यदि कवि न भी हुआ तो भी विशेष बुद्धिमान् और विचक्षण अवश्य होता है। प्रतिभाशाली पुरुषों को उत्पन्न करने की बैसवारे में अधिक शक्ति जान पड़ती है। इस प्रान्त की भूमि कवियों को उत्पन्न करने में ख़ूब उर्वरा है। हमारे जन्मग्राम का नाम दौलतपुर है। यह रायबरेली के ज़िले में, सदर स्टेशन से ३२ मील दूर, गङ्गा के किनारे है। यह बैसवारे के अन्तर्गत है। इसमें भी दो प्रसिद्ध कवि हो गये हैं। उनमें से, यहां पर, आज हम एक के विषय में कुछ लिखते हैं।

बैसवारा अवध का एक छोटा सा हिस्सा है। तुलसीदास ने प्रायः इसी प्रान्त की बोली में रामायण लिखा है। अवध में इतने कवि हो गये हैं कि ग्रियर्सन साहब को अपने "माडर्न वरनाक्यूलर लिटरेचर" (Modern Vernacular Literature) नामक ग्रन्थ के दसवें भाग में केवल १८०० से १८५७ ईसवी के बीच में हुए कवियों के लिए, एक अध्याय का अध्याय ही अलग लिखना पड़ा है। १८०० के बाद, हमारे गाँव के सिर्फ़ आस पास, जितने कवि हुए हैं उनमें से कुछ का नाम-निर्देश हम नीचे करते हैं और यह भी लिखते हैं कि उनका स्थान हमारे यहां से कितनी दूर है—

१। सुवंश शुक्ल। बिगहपुर। १२ मील। अमरकोश, रसतरङ्गिणी और रसमञ्जरी के हिन्दी में अनुवादकर्ता।

२। शिवसिंह सेंगर। कांथा। २६ मील। शिवसिंहसरोज के कर्ता; बृहच्छिवपुराण के उर्दू और हिन्दी अनुवादक; और ब्रह्मोत्तरखण्ड के हिन्दी अनुवादक।

३। जगन्नाथ अवस्थी। सुमेरुपुर। २ मील। महाराज मानसिंह, अयोध्या, और महाराज शिवदीनसिंह, अलवर, के कवि। संस्कृत के बहुत बड़े विद्वान्।

४। भवन कवि। बैंती। २६ मील। साहित्यविषयक शृङ्गाररत्नाकर नामक पुस्तक के प्रणेता।

५। बादे राय। डलमऊ। २० मील।

६। भवानीप्रसाद पाठक। मौरावाँ। २४ मील। साहित्यशास्त्र के प्रसिद्ध विद्वान्। काव्य-कल्पद्रुम के रचयिता।

७। मिहीलाल (मिलिन्द)। डलमऊ। २० मील। गौरा के तअल्लुक़ेदार भूपालसिंह के कवि।

८। गिरिधारी। सातनपुर। १४ मील। शान्त और शृङ्गार रस के अच्छे कवि।

९। शम्भुनाथ मिश्र। खजुरिगाँव। १२ मील। खजुरिगाँव के राना यदुनाथसिंह के कवि और बैस-वंशावली के लेखक।

१०। * चिरञ्जीव। लोग कहते हैं कि इन्होंने महाभारत को हिन्दी में अनुवादित किया।

११। * महानन्द वाजपेयी। इन्होंने बृहच्छिवपुराण का अनुवाद हिन्दी में किया।

१२। पञ्चम। डलमऊ। २० मील।

१३। गङ्गादयालु द्विवेदी। निसगर। २ मील। संस्कृत के बहुत बड़े विद्वान्; हिन्दी और संस्कृत दोनों के उत्तम कवि। सङ्गीतशास्त्र के पारदर्शी। इनका शरीरपात हुए अभी थोड़े ही दिन हुए।

१४। गुणाकर त्रिपाठी। कांथा। २६ मील। संस्कृत और हिन्दी, दोनों के, अच्छे कवि।

१५। कालीचरण वाजपेयी। बिगहपुर। १२ मील।

* नम्बर १० और ११ बैसवारे ही के कवि हैं; परन्तु इनका पता नहीं लगता कि वे किस जगह हुए।

१६। मूनू कवि। असोथर। २६ मील। अनेक ग्रन्थों के कर्ता; जिनमें से राम-रावण का युद्ध मुख्य है।

१७। सुन्दर कवि। असनी। १४ मील। रस-प्रबोध के कर्ता।

१८। शिवलाल दुबे। डौंडिया खेरा। २ मील। अनेक पुस्तकों के कर्ता; जिनमें से नखसिख और षटऋतु मुख्य हैं।

इनमें से कुछ कवि ठीक बैसवारे के नहीं हैं; परन्तु उनका घर बैसवारे के बहुत ही पास था। सोलहवें शतक में हुए नरहरि और हरिनाथ भी हमारे यहां से १४ मील दूर, असनी, के रहनेवाले थे। प्राचीन समय में, इस प्रान्त में, अनन्त कवि हो गये हैं; उन सबका ठीक ठीक पता लगाना अब असम्भव सा है। वर्तमान काल में भी, इस भूभाग में, कई प्रसिद्ध विद्वान् और पण्डित हो गये। संस्कृत के अच्छे विद्वान्; हिन्दी और संस्कृत में बहुत से ग्रन्थों के लिखनेवाले; शिक्षा विभाग में एक अच्छे पद का, बहुत दिनों तक, उपभोग करनेवाले; और आगरे के नूरुल्-इल्म और उदयपुर के सज्जन-कीर्ति-सुधाकर के सम्पादक, पण्डित बंशीधर वाजपेयी, इसी प्रान्त के रहनेवाले थे। इनका मकान चिन्ताखेरा नामक ग्राम में था। यह ग्राम हमारे यहां से आध मील है। बनारस कालेज के हेडमास्टर, त्रैभाषिक कोश आदि के बनानेवाले, और अंगरेज़ी के बहुत बड़े विद्वान्, पण्डित मथुराप्रसाद मिश्र भी, इसी तरफ़ के थे। इनका घर बकसर में था। यह गाँव, दौलतपुर से, २ मील है।

इसी दौलतपुर को सुखदेव मिश्र ने अपने निवास से, बहुत काल तक, अलङ्कृत किया। इनको कोई कोई "शुकदेव" भी लिखते हैं; परन्तु यहां पर ये सुखदेव ही के नाम से प्रसिद्ध हैं और अपनी पुस्तकों में इन्होंने अपना नाम सुखदेव ही लिखा है। इसीसे हमने भी इनका यही नाम लिखना उचित समझा। ग्रियर्सन साहब और शिवसिंह सेंगर ने, इनके विषय में, बड़ा गड़बड़

किया है। एक जगह आप इनको "सुखदेब मिसर" लिखते हैं और कम्पिला के रहनेवाले बतलाते हैं। दूसरी जगह आप इनका नाम "सुखदेब कबि" लिखते हैं और अन्तर्वेद (गङ्गा यमुना के बीच का भाग) इनका देश बतलाते हैं। तीसरी जगह आप इनका नाम "सुखदेब मिसर कबि" लिखते हैं और दौलतपुर इनका स्थान बतलाते हैं। साहब ने अपनी किताब विशेष करके शिवसिंह-सरोज के आधार पर लिखी है। कहीं कहीं पर तो आपने शिवसिंह के लेख का शाब्दिक अनुवाद कर दिया है। इससे शिवसिंहसरोज में सुखदेव जी के विषय में जो गड़बड़ है वही ग्रियर्सन साहब की किताब में भी है। साहब को शिवसिंहसरोज वग़ैरह में जैसा मिला है वैसा ही उन्होंने अपनी पुस्तक में लिख दिया है। ग्रियर्सन साहब ने यह पुस्तक लिखकर हम लोगों पर बहुत उपकार किया है; हम उनके कृतज्ञ हैं; और बहुत कृतज्ञ हैं। जहां तक कवियों का सही सही हाल उनको मिला है तहां तक उन्होंने लिखा है; जान बूझ कर उन्होंने लिखने में बेपरवाही नहीं की। यह सब सच है; परन्तु कहीं कहीं, उनके लेख में भ्रम ज़रूर हो गया है। एक जगह पर आप लिखते हैं—

"बाबू हरिश्चन्द्र का कविवचनसुधा भी एक सर्वप्रिय ग्रन्थ है। इसमें पावसवर्णन के पद्यों का संग्रह है।"

अस्तु। सुखदेवजी की जन्मभूमि, गङ्गा के किनारे, "कपिलमुनि की बसाई", कम्पिला नामक नगरी है। वे कान्यकुब्ज ब्राह्मण, हिमकर के मिश्र, थे। विवाह उनका कम्पिला ही में हुआ। जगन्नाथ और बुलाकीराम दो पुत्र भी उनके वहीं हुए। लड़कपन में उन्होंने मामूली तौर पर संस्कृत का थोड़ा सा अभ्यास किया था। जब वे बड़े हुए और दो पुत्र भी उनके हो चुके तब, जो कुछ उन्होंने पढ़ा लिखा था, वह उनको काफ़ी न मालूम हुआ। अधिक विद्योपार्जन की उनको इच्छा हुई। इस लिए वे बनारस गये। वहां पर किसी पहुँचे हुए सन्यासी से वे संस्कृत पढ़ने लगे। कुछ काल तक वे बड़े परिश्रम से विद्याध्ययन करने और रात रात भर अध्ययन में निमग्न रहने लगे। सुनते हैं वे अपने अध्यापक सन्यासी के ही मकान पर रहते थे। एक बार रात को बहुत देर तक वे अपने पाठ का विचार करते रहे। उनके पासही वे सन्यासी महात्मा सोते थे। सोते समय किसी किसी का मुँह अकसर खुल जाया करता है। सन्यासीजी का भी मुँह, उस रात को, अकस्मात् खुल गया और उसके भीतर से निकलते और प्रवेश करते हुए एक विशेष प्रकार की ज्योतिःशिखा को सुखदेवजी ने देखा। उन्होंने उस ज्योति को भक्तिभावपूर्वक प्रणाम किया और अपना पाठ याद करके वे भी सो रहे।

दूसरे दिन प्रातःकाल, जब वे फिर अपना पाठ लेने लगे, तब उन्होंने पढ़ते समय बहुत कुछ प्रगल्भता दिखलाई और बुद्धिमानी से भरे हुए अनेक प्रश्न करने आरम्भ किये। उनका यह बुद्धिवैखर्य्य देखकर उनके अध्यापक महात्मा को आश्चर्य्य हुआ। उन्होंने सुखदेवजी से इस वैलक्षण्य का कारण पूछा। तब उन्होंने रात की बात बतलाई। इस पर सन्यासी ने कहा कि अब आपको पढ़ने में अधिक परिश्रम करने की आवश्यकता नहीं। आप अब विद्या प्राप्त हो गई समझिए। केवल ग्रन्थावलोकन भर आपके लिए अब दरकार है। इस घटना के अनन्तर सुखदेवजी अपने उस विद्यागुरु सन्यासी से झट झट ग्रन्थावलोकन करने लगे और थोड़े ही दिनों में तन्त्र और साहित्य विद्या में निष्णात होगये।

यह बात सुखदेवजी के वंशजों को परम्परा से मालूम होती चली आई है। वे एक सिद्ध पुरुष और महात्मा थे; यह बात उनके अनेक अलौकिक कृत्यों से भी प्रकट होती है। इसका निश्चय नहीं किया जा सकता कि यह कब की बात है। न तो सुखदेवजी के जन्ममरण का समय ही ज्ञात है और न यही ज्ञात है कि कब वे बनारस गये और कितने दिनों तक वहां रहे। परन्तु जिन राजाओं और तअल्लुक़ेदारों के यहां वे रहे उनके समय का विचार

करने से यह सिद्ध होता है कि वे १७२० ग्रैार १७६५ ईसवी के बीच में विद्यमान् थे। इससे उन को हुए लगभग डेढ़ सैा वर्ष बीते। यह बात सुखदेवजी के शिष्य शम्भुनाथ के ग्रन्थों से भी स्पष्ट है। शिवसिंह रामविलास रामायण के कर्ता शम्भुनाथ के। वन्दीजन कहते हैं ग्रैार वैतालपच्चीसी इत्यादि के कर्ता के। त्रिपाठी बतलाते हैं; परन्तु यहां लोग कहते हैं कि दोनों एकही व्यक्ति हैं। यही नहीं, किन्तु भगवन्तराय खीची के यहां रहनेवाले शम्भुनाथ भी वही हैं। रामविलास में शम्भुनाथ लिखते हैं—

वसुग्रह मुनि शशधर* बरस सित फागुन कर मास।
शम्भुनाथ कविता दिनैं कीन्हों रामबिलास॥
श्रीगुरु कवि सुखदेव के चरनन हीं के। ध्यान।
निर्म्मल कविता करन के। वहै हमारे ज्ञान॥

फिर, वैतालपच्चीसी में, ग्राप कहते हैं—

नन्दव्योम धृतिजानिकै सम्वत सर† कवि शम्भु।
छवि कदम्ब लखि ग्रम्ब के कोन्हो तत ग्रारम्भ॥

इन दोहों से यह साबित होता है कि जो सम्वत् इनमें दिये हुए हैं उन्हींके दो चार वर्ष इधर या उधर सुखदेव जी हुए हैं।

विद्याध्ययन समाप्त करके सुखदेवजी ग्रपने घर नहीं गये। काशी से वे सीधे ग्रसोथर ग्राये। फ़तेपुर के ज़िले में ग्रसोथर एक क़सबा है। वहां पर, उस समय, भगवन्तराय खीची नामक एक राजा था। वह बड़ा गुणग्राही था। उसीके यहां सुखदेवजी रहे। सुखदेवजी के गुणों पर वह राजा इतना लुब्ध हो गया कि उनका शिष्य हो कर वह सेवक बन गया। वहां सुखदेवजो का बड़ा मान हुग्रा। ग्राउस साहब ने फ़तेहपुर-गज़ेटियर के परिशिष्ट में भगवन्तराय खीची का हाल लिखा है। वह स्वयं कवि था। कई पुस्तकैं उसने लिखी थीं। परन्तु ग्रब उनका कुछ पता नहीं लगता। भगवन्तराय ने बहुत वर्षों तक बादशाह के मालगुज़ारी नहीं दी। वह स्वतन्त्र हो गया था ग्रैार दो एक बार बादशाही फ़ैाजों के। उसने परास्त भी किया था। परन्तु १७६० ईसवी में वह दग़ा में मारा गया।

सुखदेवजी शाक्त थे। वे तारा के उपासक थे। यन्त्र-द्वारा उसकी वे विधिपूर्वक पूजा-ग्रर्चा किया करते थे। इस प्रकार की पूजा में मद्य-मांस की भी ग्रावश्यकता होती है; ग्रतएव वह सामग्री भी सुखदेवजी के। इकट्ठा करनी पड़ती थी। यह बात लोगों ने भगवन्तराय से कह दी। सुन कर उसे ग्राश्चर्य्य हुग्रा। ऐसे विद्वान्, ऐसे पण्डित ग्रैार ऐसे ग्रच्छे कवि की पूजन-सामग्री में मद्य-मांस! उसके। इस बात का विश्वास न ग्राया; इस लिए उसने ख़ुद इसकी सत्यता ग्रथवा ग्रसत्यता की जाँच करनी चाही। एक दिन, जिस समय, उसके ग्रादमियों ने उसे ख़बर दी कि मिश्रजी विधिपूर्वक पूजा करने जाते हैं, उसी समय वह मिश्रजी के पास ग्राकर उपस्थित हुग्रा। ऐसे कुसमय में भगवन्तराय के। ग्राया देख सुखदेवजी के चेहरे पर क्रोध, ग्राश्चर्य्य ग्रैार घृणा के चिन्ह ग्राविर्भूत हो ग्राये; परन्तु भगवन्तराय के। उन्होंने ग्रासन दिया ग्रैार ग्राने का कारण पूछा। उसने कहा कि पूजा के समय में सिर्फ़ ग्रापका दर्शन करने ग्राया हूं। इस समय पूजन की सामग्री के बीच एक पात्र में मद्य ग्रैार एक पत्तल में मांस भी ढका हुग्रा रक्खा था। भगवन्तराय के ग्राने के समय सुखदेवजी पूजन में निमग्न थे; परन्तु उसके ग्राने पर उन्होंने पूजा स्थगित कर दी ग्रैार उसकी तरफ़ वे मुख़ातिब हो गये।

कुछ देर तक ग्रैार ग्रैार बातैं करने के ग्रनन्तर, भगवन्तराय ने वहां पर रक्खे हुए सब पदार्थों के नाम पूछना ग्रैार सुखदेवजी ने सबके नाम बतलाना शुरू किया। यथाक्रम उस पात्र ग्रैार पत्तल की बारी ग्राई। वे ढके हुए थे। उनके विषय में भी जब भगवन्तराय ने प्रश्न किया, तब मिश्रजी के नेत्रों में ग्रैार भी ग्रधिक ग्ररुणिमा ग्रा

* सं० १७९८ † सं० १८०९

गई। परन्तु नाम बतलाने में उन्होंने ज़रा भी सङ्कोच या विलम्ब नहीं किया। उन्होंने कहा कि पात्र में दूध और पत्तल में गुड़हल के फूल हैं। यह कहकर पास ही खड़े हुए सेवक के हुक्म दिया कि इन दोनों के ढक्कन खोल दो। परन्तु वह तो जानता था कि उनमें वे पदार्थ नहीं हैं; इसलिए उसने खोलने में आनाकानी की। जब दो बार कहने पर भी उसे खोलने का धैर्य न हुआ, तब सुखदेवजी ने उस पात्र और पत्तल के ढक्कन को ख़ुद खोल दिया। खोलते ही उनके कहने के मुताबिक़ उनमें दूध और गुड़हल के फूल देख पड़े! यह करके सुखदेवजी ने फूलों से भरी हुई वह पत्तल तारा के यन्त्र के ऊपर ज़ोर से उलट दी और दूध भी उसी पर डाल दिया। फिर आपने पूजन नहीं किया और उसी वक़्त वहां से प्रस्थान करने को तय्यार हुए। यह सब लीला देख कर भगवन्तराय चकित हो उठा। उसने अनेक प्रकार से क्षमा प्रार्थना की। उसके यहां बहुत से और पण्डित तथा कवि थे। उनको भी मध्यस्थ करके उसने अपना अपराध क्षमा कराने की कोशिश की; परन्तु सब व्यर्थ हुआ। सुखदेवजी उसी दिन वहां से चले आये और फिर कभी वहां नहीं गये।

दौलतपुर से २ मील दूर गङ्गा के किनारे बकसर नाम का एक गाँव है। उसके पास ही चण्डिका का एक प्राचीन मन्दिर है। सुखदेवजी असोथर से रवाना होकर यहीं आये और एक कुटी में विरक्तवत् रहने लगे।

चण्डिका के मन्दिर से थोड़ी दूर पर डोंडिया-खेरा नामक एक गाँव था। उसमें मर्दनसिंह नाम-धारी एक तअल्लुक़ेदार रहते थे। उनको राव का ख़िताब था। इस प्रान्त में इनकी प्रभुता ख़ूब बढ़ी चढ़ी थी। बादशाह से इन्होंने कई परगनों की मालगुज़ारी वसूल करने का ठेका ले लिया था। राव मर्दनसिंह के अन्तिम वंशज राव राम-बख़्श हुए। उन्होंने, अभाग्यवश, १८५७ ई० में अंगरेज़ों से प्रतिकूलता की और बाग़ी हो गये। जिसका फल यह हुआ कि इनकी रियासत अंगरेज़ राज के कोपानल में भस्म हो गई; और अन्त में पकड़े जाकर, बकसर में इनको फाँसी हुई। इस समय, इनकी राजधानी डौंडियाखेरा में, गीदड़, भेड़िया और लोमड़ी आदि अमङ्गल जानवरों का निष्कण्टक राज्य है।

बकसर में सुखदेवजी की ख्याति प्रतिदिन बढ़ने लगी। बहुत आदमी इनके शिष्य हो गये। इनकी प्रशंसा और पण्डिताई जब राव मर्दनसिंह ने सुना तब उनको भी इनसे मिलने की उत्कण्ठा हुई। मिलकर वे इतने प्रसन्न हुए कि वे भी इनके शिष्य हो गये। यहां भी परीक्षा ने उनका पिण्ड नहीं छोड़ा। कहते हैं, उनकी कुटी में साही नाम की एक युवा स्त्री रहती थी। वह सुखदेवजी की हमेशा सेवा और परिचर्य्या करती थी। किसी किसी का कथन है कि वह बाल-विधवा थी; परन्तु किसी किसी का मत है कि वह कुमारिका थी—उसका विवाह नहीं हुआ था। इस स्त्री के कारण मिश्रजी के विषय में लोग नाना प्रकार के कुतर्क करने लगे; उन्होंने उनका दुर्लौकिक फैलाना आरम्भ किया। जब यह सम्वाद राव मर्दनसिंह के कान तक पहुँचा तब उनको बहुत रञ्ज हुआ। उन्होंने सब बातें प्रत्यक्ष देखने का इरादा किया। लोगों के प्रवाद पर उनको विश्वास न आया। अतएव एक दिन वे स्वयं इनकी कुटी में आये। सुखदेवजी महात्मा थे; उन्होंने अपने अन्तर्ज्ञान से इनके आने का कारण जान लिया। अतएव जहां राव मर्दनसिंह उनकी कुटी के प्राङ्गण में आये तहां उन्होंने कहा—"साही, राव साहब के लिए आसन ले आ"। यह कहते ही एक सुस्वरूपा स्त्री कुटी के भीतर से आसन लेकर निकली। यथा-स्थान उसने आसन बिछा दिया। बिछाकर वह राव के सामने ही दूसरी ओर चली गई। आसन बिछ जाने और मर्दनसिंह के बैठ जाने पर फिर सुखदेवजी ने साही को पुकारा और जल लाने की आज्ञा दी। पूर्ववत् फिर एक वैसी ही साही कुटी

से निकली। उसने जल दिया और वह भी बाहर चली गई। सुखदेवजी की आज्ञा के अनुसार तीसरी साही पान लाई; चौथी पुष्पमाला लाई; पाँचवीं और कुछ लाई। इस प्रकार दस पाँच साही उस छोटी सी कुटी के भीतर से निकलीं और अपना अपना काम करके बाहर चली गईं। यह लीला देखकर राव मर्दनसिंह हैरान हो उठे; आतङ्क और भक्तिभाव से उनकी अजब हालत हो गई। उन्होंने बारम्बार सुखदेवजी को सप्रेम और सभय प्रणाम किया और अपनी अविवेकता पर खेद प्रकाश किया। राव मर्दनसिंह की इस कार-रवाई से मिश्र महाराज के पूजन पाठ में कोई व्यतिक्रम या विघ्न तो आया ही न था; इसलिए उन्होंने राव पर कोप-प्रदर्शन न करके उनके कृतापराध को क्षमा कर दिया। तब से राव मर्दनसिंह उनको बहुत ही इज़्ज़त करने लगे। उनके लिए उन्होंने एक स्थान अपनी राजधानी में बनवा दिया। वहीं सुखदेवजी रहने और पूजा पाठ तथा काव्यालाप में अपने समय का सद्व्यय करने लगे।

डौंडियाखेरा में कवियों का बड़ा आदर था। वहां राजाश्रय में रहकर तीरथराज नामक एक कवि ने संस्कृत समरसार का हिन्दी अनुवाद किया। यह ज्योतिष का ग्रन्थ है; इसमें युद्धविषय है। सुखदेवजी के शिष्य शम्भुनाथ त्रिपाठी भी बहुत दिनों तक डौंडियाखेरा में थे। इन्होंने वैतालपञ्चविंशतिका का हिन्दी गद्य में भाषान्तर किया और मुहूर्तचिन्तामणि का हिन्दी में पद्यात्मक अनुवाद बनाया। इन्होंने रामविलास नामक एक रामायण की भी रचना की। साहित्य-शास्त्र में सुखदेवजी के जितने शिष्य थे उन सबमें शम्भुनाथ और जयदेव ही प्रसिद्ध हुए। शम्भुनाथ डौंडियाखेरा में अचलसिंह के आश्रय में और जयदेव कवि देहली में नवाब फ़ाज़िलअली ख़ां के आश्रय में बहुत दिनों तक रहे।

धीरे धीरे सुखदेवजी की प्रसिद्धि दूर दूर तक फैल गई। दूर दूर से लोग इनके दर्शनों के लिए आने लगे। इनके शिष्यों की भी संख्या बढ़ती गई। इनकी कीर्तिकौमुदी का प्रकाश जब अमेठी के राजा हिम्मतसिंह की राजधानी में पहुँचा, तब उसे भी इनके दर्शन की उत्कण्ठा हुई। सुखदेवजी अमेठी गये। वहां भी उनका ख़ूब सम्मान हुआ। तब से वे कुछ दिन डौंडियाखेरा में और कुछ दिन अमेठी में रहने लगे। जो राजा या तअल्लुक़ेदार इनसे मिलता, वह इनका शिष्य हुए बिना न रहता। हिम्मतसिंह ने भी इनसे गुरुदीक्षा ली।

जिस समय सुखदेवजी अमेठी में थे, एक ब्राह्मण का लड़का मर गया। उस ब्राह्मण ने सुखदेवजी का माहात्म्य सुना था। इसलिए लड़के का निर्जीव शरीर उसने सुखदेवजी के स्थान के सामने रख दिया और बड़े ही करुणस्वर से वह रोने लगा। बहुत समझाने बुझाने पर भी वह शान्त न हुआ और अन्त को उस शरीर को वहीं छोड़ वह अपने घर चला आया। सुखदेवजी बड़े सङ्कट में पड़े। बहुत सोच विचार के अनन्तर उन्होंने देवी की स्तुति आरम्भ की जिसका अन्तिम पद्य यह था—

> आन तुही और लज्जा तुही
> तुही लक्ष्मी है सीतले मेरी गुसाइनि।
> आपनो कै मोहिँ जानती हो
> मैं सदा ही परो रहों तेरे ही पायनि॥
> जाहि निवाजै निहाल ह्वै जाइ सो
> जानत हैं सब तेरे सुभायनि।
> तेरो भिखारी हों भीख दे मोहिँ
> तू राखि ले बाल बड़ी ठकुराइनि॥

सुनते हैं, इसके समाप्त होते ही उस बालक के शरीर में प्राण-सञ्चार हो आया!

एक बार डौंडियाखेरा के राव मर्दनसिंह बीमार हुए। बीमारी यहां तक बढ़ी कि जीने की आशा न रही। उस समय सुखदेवजी अमेठी में थे। इसलिए वहां से उनको लाने के लिए आदमी गये। मिश्रजी आये तो नहीं; परन्तु जो लोग उनको बुलाने

गये थे उनसे उन्हों ने कह दिया कि यद्यपि राव मर्दनसिंह की हालत बहुत बुरी है तथापि वे मरेंगे नहीं। यह कहकर उन्होंने दो संस्कृत श्लोक ग्रैार एक हिन्दी सवैया उनको दिया। सवैया यह था—

ग्ररिमण्डल फोरि फते करिके
पर-फौजन फारि कै नाखिबे है;
बहु संख्यक छन्द प्रबन्ध बनाय
हमैं जस रावरो भाखिबे है।

ग्रकुलाने कहा मरदाने ग्रबै
रस श्रौनन तें तुम्हैं चाखिबे है;
रघुनायक राम की नाईं तुम्हैं
जग में रहिबे जग राखिबे है॥

कहते हैं कि जब ये पद्य लेकर ग्रादमी डौंडियाखेरा ग्राये तब मर्दनसिंह म्रियमाण दशा में गङ्गा के किनारे पहुँचाये जाचुके थे। सुखदेवजी की ग्राज्ञा थी कि यदि मर्दनसिंह सुन सकें तो उनको यह कविता उनको सुना दी जाय; यदि देख सकें तो दिखा दी जाय; ग्रैार यदि यह भी न कर सकें तो गङ्गाजल में घोलकर पिला दी जाय। सुनने ग्रैार देखने की शक्ति क्षीण होजाने से, यह कविता, मुँह खोलकर, किसी तरह, उनको पिला दी गई। कविता का काग़ज़ गङ्गाजल में घोलकर वही जल उनके मुँह में डाल दिया गया। कहा जाता है कि इसके थोड़ी ही देर बाद राव मर्दनसिंह ने ग्राँखें खोल दीं ग्रैार वे, क्रम क्रम से, नीरोग हो गये!

जिस मर्दनसिंह के ऊपर सुखदेव जी की इतनी कृपा थी उसका परित्याग ग्रापने एक ज़रा सी बात पर कर दिया। महात्माग्रों की सभी बातें विलक्षण होती हैं। एक दफ़ा ग्राप ग्रमेठी से डौंडियाखेरा वापस ग्राये। वहां ग्राकर देखते हैं तो मैंरावां-निवासी निशाकर नामक एक पण्डित इनके स्थान में ठहरे हुए हैं। इनके ग्राते ही राव के ग्रादमी इनके ठहराने ग्रैार सेवा सुश्रूषा में लग गये। परन्तु एक पण्डित ग्रैार इज्ज़तदार ग्रादमी को, जो भूल से मिश्रजी के स्थान पर ठहरा दिये गये थे, निकाल देना उचित न समझा गया। इसलिए मिश्रजी से प्रार्थना की गई कि ग्राप तब तक ग्रपने से भी ग्रच्छे एक ग्रन्य स्थान में ठहरें। परन्तु ग्रपने स्थान में दूसरे का ठहराया जाना सुखदेव महाराज को सहन न हुग्रा। उन्होंने किसी की विनती ग्रैार किसीकी प्रार्थना न मानी। जो लोग उनको शांत्वना करने ग्राये थे, उनसे ग्रापने केवल इतना ही कहा कि ग्रब यहां निशाकर रहने लगे हैं तो निशाचर ही रहेंगे। ग्रापने कुपित हो कर यह भी कहा कि हम क्या हमारे वंश का भी कोई ग्रादमी ग्रब यहां नहीं ग्रावैगा। सुखदेवजी की वाणी सत्य निकली। ग्रब डौंडियाखेरा में सचमुच ही निशाचर रहते हैं। उनके वंशजों में से केवल एक सुजान नामक मिश्र कुछ काल तक डौंडियाखेरा के राव के ग्राश्रय में रहे। परन्तु उनके कुटुम्ब का समूल नाश हो गया! यह शायद सुखदेव जी के ग्राज्ञोल्लङ्घन का ही फल हो।

डौंडियाखेरा छोड़ कर सुखदेवजी फिर बकसर ग्रा गये ग्रैार वहां पर ग्रपनी पुरानी कुटी में रहने लगे। यद्यपि राव मर्दनसिंह ने बहुत मनाया ग्रैार फिर ग्रपने यहां ले जाने की बहुत कोशिश की; परन्तु ग्राप किसी तरह जाने पर राज़ी नहीं हुए। इन घटनाग्रों से सुखदेवजी को हिन्दू राजाग्रों से कुछ घृणा सी हो गई। परन्तु राजसभाग्रों में बैठने ग्रैार काव्यालाप करने का ग्रापको चसका सा लग गया था। इससे ग्रापने फिर राजाश्रय लेना चाहा। इस बार ग्रापने हिन्दू छोड़ मुसल्मान के यहां रहना उचित समझा। ग्रतएव ग्रपनी काव्यकला ग्रैार ग्रलौकिक करामातों से ग्रैारङ्गज़ेब के मन्त्री नबाब फ़ाज़िलग्रलीख़ां को प्रसन्न करके ग्राप उसके यहां रहने लगे। एक दिन दरबार में ग्राप बैठे थे कि बाहर नक़ारे की ग्रावाज़ सुनाई दी। इस पर फ़ाज़िलग्रलीख़ां ने पूछा "पण्डित जी, यह क्या कह रहा है"? ग्रापने तत्काल उत्तर दिया—

झार दमामे ना बजत कहत पुकार पुकार।
हरि न भजे तें पशु भये परत चाम पर मार॥

इसे सुनकर नवाब बहुत ख़ुश हुआ।

दौलतपुर से पाँच मील पर मुरारिमऊ नामक एक अच्छी रियासत है। इसके तअल्लुक़ेदार राजा कहलाते हैं। बैसों में अकेले इन्हीं को, इस तरफ़, राजा की पदवी प्राप्त है। जब तक ये अपने अँगूठे से तिलक नहीं करते तब तक दूसरे तअल्लुक़ेदार या राजाओं का तिलकोत्सव सिद्ध नहीं माना जाता। विद्रोह के वक्त यहां के तत्कालीन राजा ने अङ्गरेज़ों की बहुत ख़ैरख़ाही की। इस उपलक्ष्य में उनको बहुत सा इलाक़ा भी मिला। सुखदेवजी के समय में यहां देवीसिंह नामक राजा थे। मुरारिमऊ और डौंडियाखेरा में बहुत दिन से विरोध चला आता था। इसलिए राजा देवीसिंह ने अपने विरोधी मर्दनसिंह के कवि को आश्रय देने में अपनी बड़ाई समझी। इसलिए वे इनको अपने यहां लाये और इनके शिष्य हुए।

सुखदेवजी पर राजा देवीसिंह की भक्ति बढ़ती गई। जब से सुखदेवजी ने कम्पिला को छोड़ा, तब से उन्होंने स्त्री, पुत्र और अपने कुटुम्ब से कोई सम्बन्ध नहीं रक्खा। किसीसे अपने घर का पता तक उन्होंने नहीं बतलाया। परन्तु राजा देवीसिंह ने उनको यहां तक प्रसन्न किया कि उन्होंने अपने घर का ठीक ठीक पता बतला दिया। तब से राजा देवीसिंह उनको अपनी स्त्री और पुत्रों को बुलाने के लिए अनुरोध करने लगे। रगड़ बुरी होती है; जिस बात के पीछे पड़े रहो वह, एक न एक दिन, सफलता को प्राप्त ही होती है। सुखदेव जी ने राजा देवीसिंह की प्रार्थना को स्वीकार कर लिया। तब यह विचार दरपेश हुआ कि आपके लिए मकान कहां पर बनै। सुखदेवजी गङ्गा के बड़े भक्त थे। सुनते हैं, एक दिन, आप दौलतपुर के पास गङ्गास्नान के लिए आये। घाट पर आपने स्नान किया और पूजन के अनन्तर विष्णुसहस्रनाम का पाठ आरम्भ किया। पाठ समाप्त न हुआ था कि आपने वहां से चल दिया और पाठ जारी रक्खा। घाट से कोई तीन फरलाङ्ग पर, दौलतपुर में, आपका पाठ ख़तम हुआ। तब आपने कहा कि हमारे लिए विश्राम की यही जगह ठीक होगी। बस, फिर क्या था, राजा देवीसिंह ने आपके लिए यहीं पर मकान बनवा दिया और इनके कुटुम्ब को भी कम्पिला से बुलाकर यहीं रख दिया। सुखदेव जी यद्यपि अपने पुत्र-कलत्र के साथ, यहां पर, आमरण रहते रहे, तथापि, सुनते हैं, वे गृहस्थाश्रम के झञ्झटों में ज़रा भी लीन नहीं हुए। गङ्गास्नान, भगवद्भजन और काव्यालाप ही में उनका शेष जीवन व्यतीत हुआ। गङ्गा की स्तुति में उन्होंने बहुत सी स्फुट कवितायें कही हैं। सुखदेवजी को कई जगह बड़ी बड़ी जागीरें मिलती थीं; परन्तु, उनके वंशजों का कथन है, कि उन्होंने उनको लेना स्वीकार नहीं किया। वे कहते थे कि हमको किसी प्रकार की सम्पत्ति अपेक्षित नहीं; जो कुछ दिन भर में मिलता है उसे शाम तक देवार्पण कर देना ही हम अपनी परिमित प्राप्ति का सदुपयोग समझते हैं। परन्तु राजा देवीसिंह ने बहुत कह सुन कर दौलतपुर लेने पर इनको राज़ी किया। इन्होंने इसे ख़ुद तो लिया नहीं; अपने लड़कों को दिला दिया। बहुत दिनों तक सुखदेव जी के वंशजों का अधिकार इस गाँव पर रहा; परन्तु, बाद में, कई कारणों से, वह उनके हाथ से निकल गया। इस गाँव के पास गङ्गा के किनारे एक पक्का घाट और कई शिवालय हैं। कुटीर भी कई बने हुए हैं जहाँ कभी कभी साधु सन्यासी आकर ठहरा करते हैं।

दौलतपुर में भी सुखदेवजी की सिद्धता की दो एक परीक्षायें हुईं। उनसे मिलने और उनके दर्शन करने के लिए लोग दूर दूर से आते थे। यह हम कही चुके हैं। सुनते हैं, एक बार, गङ्गातट पर, जल के बिलकुल सन्निकट वे पूजा कर रहे थे। इतने में एक महात्मा उनसे मिलने आये। कुछ देर तक वार्तालाप के अनन्तर उन्होंने सुखदेवजी के

हाथ में एक गुटिका दी और कहा कि यह बड़े काम की चीज़ है; इसे मैंने बड़े परिश्रम से पाया है। इसमें यह गुण है कि इसे मुख में रखने से अनेक अलौकिक काम करने की शक्ति आ जाती है। यह सुनकर मिश्रजी ने कहा कि—"बस, इसमें इतना ही गुण है?" यह कहकर उन्होंने उसे गङ्गा में फेंक दिया। इस पर वह आगन्तुक बहुत कुपित हुआ और इनको बुरा भला कहने लगा। यह देख कर सुखदेवजी ने अपने दोनों हाथों की अञ्जुली बनाकर चुपचाप गङ्गा के भीतर डाली और उसमें भरी हुई वैसी ही कोई बीस पचीस गुटिकायें निकालीं। तब उस महात्मा से आपने कहा कि इनमें से आपकी जो गुटिका हो उसे आप पहचान कर ले लें। यह अघटित घटना देख कर वह आगन्तुक अवाक् हो रहा और सुखदेवजी की स्तुति करता हुआ मार्गस्थ हुआ। एक और भी इसी तरह की घटना एक बार हुई। इस बार भी वे पूजा कर रहे थे कि एक विद्वान् उनसे मिलने आये और उनके देव-सिंहासन का मुख अपनी तरफ़ को बिना हाथ लगाये फेर दिया। परन्तु ज्योंहीं यह बात सुखदेवजी के ध्यान में आई त्योंही वह सिंहासन, आपही आप, फिर पूर्ववत् इनकी तरफ़ हो गया! ये बातें यहां के वृद्ध मनुष्य परम्परा से सुनते चले आते हैं।

जिस तरह सुखदेवजी के जन्मकाल का पता नहीं लगता, वैसे ही उनके मृत्यु-काल का भी नहीं लगता। यह खेद की बात है। परन्तु यह निश्चित है कि उनका शरीरपात यहीं उनके गाँव में हुआ।

सुखदेवजी के चार ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं—रसार्णव, वृत्त-विचार-पिङ्गल, शृङ्गारलता और फ़ाज़िल-अली-प्रकाश। डौंडियाखेरा के राव मर्दनसिंह के लिए उन्होंने रसार्णव बनाया; अमेठी के राजा हिम्मतसिंह के लिए वृत्त-विचार-पिङ्गल; मुरारिमऊ के राजा देवीसिंह के लिए शृङ्गारलता; और नबाव फ़ाज़िलअलीख़ां के लिए फ़ाज़िल-अली-प्रकाश। रसार्णव में नायिका-भेद है; वृत्त-विचार में वृत्तों के लक्षण और उदाहरण हैं; और फ़ाज़िल-अली-प्रकाश में साहित्य के सब अङ्ग—काव्य के गुण-दोष, लक्षणा, व्यञ्जना और अलङ्कार आदि—का वर्णन है। परन्तु हम यह नहीं कह सकते कि शृङ्गारलता में क्या है; न हमने उस पुस्तक को देखा और न यहां (दौलतपुर में) उसके विषय से कोई अभिज्ञ मिला। शिवसिंह के आधार पर ग्रियर्सन साहब कहते हैं कि सुखदेवजी गौड़ में अर्जुनसिंह के बेटे राजा राजसिंह के यहां भी थे और वहां उनको कविराज की पदवी मिली थी। वे और शिवसिंह यह भी कहते हैं कि गौड़ में उन्होंने वृत्तविचार नामक एक छन्दोविषयक ग्रन्थ बनाया जो हिन्दी के छन्दोग्रन्थों में सबसे अच्छा समझा जाता है। परन्तु सुखदेवजी के वंशजों को इस बात की बिलकुल ख़बर नहीं। वे कहते हैं कि सुखदेवजी कभी गौड़ को नहीं गये; और वृत्त-विचार-पिङ्गल उन्होंने गौड़ में नहीं बनाया। उसे उन्होंने अमेठी में हिम्मतसिंह के लिए बनाया। उसके आरम्भ में उन्होंने हिम्मतसिंह को आशीर्वाद कहा है, यथा—

"सुखदेव सदाशिव मुदित मन
हिम्मतसिंह नरिन्द कहँ।"

कविराज की पदवी भी गौड़ से उन्हें नहीं मिली। वे अपने फ़ाज़िल-अली-प्रकाश में लिखते हैं—

अलहयार ख़ां भुजबली सुमति सूर सिरताज।
जिन्है दियो कविराज पद बड़े ग़रीब नेवाज॥

इससे साफ़ ज़ाहिर है कि कविराज की पदवी उनको अलहयार ख़ां ने दी थी, गौड़-नरेश ने नहीं। सुखदेवजी के बनाये हुए ग्रन्थों में ग्रियर्सन और शिवसिंह एक छन्दोविचार पिङ्गल बतलाते हैं, वह शायद किसी दूसरे सुखदेव का बनाया होगा। वे यह भी लिखते हैं कि सुखदेवजी ने अध्यात्म-प्रकाश और दशरथराय नाम के भी दो ग्रन्थ बनाये हैं; परन्तु इस बात से भी दौलतपुर-निवासी बुड्ढे बुड्ढे मिश्र अनभिज्ञता प्रकाशित करते हैं। उनका मत है कि, ये ग्रन्थ भी शायद किसी दूसरे

सुखदेव के बनाये हैं। ये पुस्तकें हमारे देखने में नहीं आईं, इससे इस विषय में हम विशेष कुछ नहीं कह सकते। यदि वे देखने के मिलतीं तो, सम्भव था, इस बात का निर्णय हो जाता कि वे किसकी बनाई हुई हैं।

सुखदेवजी ने अनेक उत्तमोत्तम ग्रन्थों का संग्रह किया था। परन्तु, बड़े अफ़सोस की बात है, वे प्रायः सभी नष्ट हो गये। उनके वंश में दो चार ऐसे कुलाङ्गार पैदा हुए कि उन्होंने उनकी सञ्चित पुस्तकों के नाश ही कर दिया। कुटुम्ब अधिक होने से इन लोगों में कई बार हिस्सा बाँट हुए। एक दफ़ा, बाँट बूँट के समय, सरस्वती के कुछ सच्चे सेवकों ने, पुस्तकों के बाँटने में अश्रुत-पूर्व काररवाई की। उन्होंने बेठन खोल कर सब पुस्तकों के एक जगह रक्खा। फिर एक एक पत्र अलग अलग करके सबको एक दूसरे से मिला कर अनाज की ऐसी एक राशि बनाई। तब आप लोगों ने तराज़ू पर रखकर बराबर बराबर, पन्ने, या जिसको जितने मिलने थे उतने, बाँट लिये। इस तरह हर हिस्सेदार ने सब पुस्तकों के थोड़े थोड़े पन्ने लेकर सुखदेवजी के कीर्तिकल्पद्रुम के अपने कररूपी कुटिल कुल्हाड़ों से काट कर कल की! बहुत सम्भव है कि सुखदेवजी के वृत्त-विचार, अध्यात्मप्रकाश और दशरथराय आदि ग्रन्थ इन्हीं महात्माओं ने निर्मूल कर दिये। एक महाशय के यहां सुनहरी स्याही से लाल काग़ज़ पर, सुखदेवजी के हाथ से लिखे हुए एक पुस्तक के कुछ पन्ने देखकर, हमको सख्त् मनोवेदना हुई। उनकी लिखावट ऐसी स्पष्ट, सम और सुन्दर थी कि एक एक पत्र एक एक चित्र सा मालूम होता था।

सुखदेवजी की बनाई हुई पुस्तकों के खोजने में हमको बहुत प्रयास पड़ा। इस निबन्ध के लिखने की इच्छा हमें अपने ग्राम, दौलतपुर, ही में हुई और वहीं हम इसे लिख भी रहे हैं। इच्छा होने पर हमने मिश्रजी के वंशजों से उनकी पुस्तकें देखने के माँगी। परन्तु अजीब अजीब तरह के उत्तर हमें मिले। एक ने कहा—"कहि न सकब हमरे हियां है कि नाहीं"। दूसरे ने कहा—"रहैं तो पोथी मुदा + + + + कम्पू (कानपुर) लै कै चले गे हैं"। तीसरे ने कहा—"बाबा की पोथी हमरे हींसा मा नहीं परीं;—भाई के हियां हुँ हैं; उनहिन ते पूंछौ"। चौथे ने कहा—"रहैं तो मुदा मिलती ही नहीं ना; हम तो दुइ दिन ढूंढि कै हारि गैन"। जब हमने यह दशा देखी तब मूड़ मार कर चुप हो रहे। परन्तु एक सज्जन ने, पीछे से, हम पर कृपा की, जिससे हम यह लेख लिखने में समर्थ हुए।

ग्रियर्सन साहब और शिवसिंह कहते हैं कि सुखदेवजी हिन्दी के कवियों में आचार्य माने जाते हैं। यह बात बहुत दुरुस्त जान पड़ती है। इनकी पुस्तकें इस बात को सिद्ध कर रही हैं। इनके ग्रन्थों में से रसार्णव की कविता बहुत ही अच्छी है। उसमें वर्णन किये गये विषय का विचार न करके केवल कविता का विचार करने से यह अवश्य कहना पड़ता है कि वह सर्वथा "आचार्य" के योग्य हुई है। स्थान की सङ्कीर्णता के कारण हम इस पुस्तक से सिर्फ़ दोही एक पद्य उद्धृत कर सकेंगे। जो पुस्तक हमारे सामने है वह सम्वत् १८९३ की लिखी हुई है। उसका आरम्भ इस प्रकार है—

कानन टूटें विघन के जानन के यह ज्ञान।
कज आनन की जाति मिटि गज आनन के ध्यान॥
मरदन राउ निदेश को सादर शीश चढ़ाय।
मिश्र सुकवि सुखदेव नैं दीन्हों ग्रन्थ बनाय॥

इसमें सुखदेवजी चन्द्राभिसारिका का यह लक्षण लिखते हैं—

जोहै जहां मगु नन्दकुमार,
तहां चली चन्दमुखी सुकुमार है,
मोतिन ही को कियो गहनो सबु,
फूलि रही जनु कुन्द की डार है।
भीतरही जु लखी सो लखी,
अब बाहिर जाहिर होति न दार है;
जोन्ह सी जोन्हैं गई मिलि यों,
मिलि जाति ज्यों दूध में दूध की धार है॥

पुस्तक के अन्त में आप कहते हैं—

यह मरदान रसारनो पूरो कीन्हो ग्रन्थ ।
या के जाने जानिये रसग्रन्थन को पन्थ ॥

सुखदेवजी की स्फुट कविता में—

(१) त्यों भुवकन्त बिना भगवन्त लगै सब अन्तर-
वेदि न नीकी ।

(२) इतै कवि मुख तें जस आखर खुलत उतै पाखर
समेत पील खुलैं पीलखाने तें ।

इत्यादि पद्य बहुत ही अच्छे हैं ।

सुखदेवजी के वंश में उनके प्रपैात्र शीतलदीन भी अच्छे कवि हुए । इन्होंने राधाभोगविलास नाम की एक पुस्तक लिखी है; परन्तु उसका भी सर्वनाश हो गया, या बची; ग्रैार जो बची तो कहां ग्रैार किसके पास है; इसका पता नहीं लगता । सब मिश्र महाराज दोहाई देते हैं कि उनमें से किसीके पास नहीं । शीतलदीनजी बीच में अन्धे होगये थे । अन्धेपन में उन्होंने विष्णु ग्रैार वैष्णवी, दोनों की प्रार्थना में स्फुट कविता की है । नेत्रों का विकार जाने के लिए वे ग्रोषधि भी करते थे ग्रैार देवाराधना भी करते थे । उनकी, इस समय की, कविता के दो उदाहरण देकर हम इस लेख को समाप्त करते हैं ।

विष्णु की प्रार्थना—

द्विरद की पुकार सुनि ग्राह ते बचायो धाय
द्रुपदी की लाज काज चीर भयो ग्राय है ;
गैातम की नारि पग परसि पुनीत कीन्हो
खम्भ फोरि ग्रायो प्रह्लाद काज धाय है ।
सीतल महीतल में केते उपकार कीन्हे
याही के प्रभाव तेरो जग जस गाय है ;
नैनन में निरञ्जन जो ग्रञ्जन ह्वै न लागिहै तो
बिरद तिहारो सब रद्द परि जाय है ॥

देवी की प्रार्थना में उन्होंने कई कवितायें लिखी हैं; उनमें से एक यह है—

परम पद दानी सिद्धि निधि की निसानी
घट घट में समानी चहूं बेदन बखानी है ;
महिषासुर मारि चंडमुंडहि बिदारि
रक्तबीजहि संहारि शुंभ दानवै रिसानी है ।
महा मरदानी गहे कठिन कृपानी
कहि सीतल सयानी तिहूं लोकन में जानी है ;
दादि सुनि लीजै, मेरे नैन करि दीजै,
सुनि पाथर पसीजै तू तो ग्रादि महरानी है ॥

यह कविता बुरी नहीं है; "कविराज" के वंश में उत्पन्न कवि के सर्वथा ग्रनुरूप है ।



कोकिल ।

[१]

उडुगण क्षय भी हों; दीखते भी कहीं हों;
गत जब रजनी हो; पूर्व सन्ध्या बनी हो ।
मृदुल-मधुर निद्रा चाहता चित्त मेरा ;
तब पिक ! करती तू शब्द प्रारम्भ तेरा ॥

[२]

ग्रति-मधुर-रसीला शब्द तू है सुनाती ;
रसिक-जन सभी तू नींद से है जगाती ।
मनहरन सुनाके कान-मीठी प्रभाती ;
ग्रलसित चितको भी नित्यही तू लुभाती ॥

[३]

विहग सब सुनाते प्रायशः शब्द प्यारे;
विविध विध दिखाते शब्द-चातुर्य सारे।
कलरव-गति सब की भास होती बुरी है;
जब पिक! दिखलाती शब्द को चातुरी है॥

[४]

सरस-उपवनों में, वाटिका में, सदा ही;
गिरि-सरित-तटों के प्रान्त में, सर्वदा ही।
सुरभित-हरियाली है जहां, दीखती तू;
सु-मधुर-मतवाली कूक को कूजती तू॥

[५]

पीती स्वयं है; नहिँ तू पिलाती;
प्रमत्त हो हो ध्वनि है सुनाती।
तथापि, उन्मत्त अहो! बनाती;
बता कहां मादक द्रव्य पाती?

[६]

मिला अहो! क्या सु-रसाल-डाल से?
किम्वा किसी गुञ्जित-भृङ्ग माल से?
न सर्वथा ही इनसे मिला तुझे;
न दे दिखाई उनमें कभी मुझे॥

[७]

मिला तुझे है ऋतुराज से यह;
अवश्य देता सबको न है वह।
मिलै न तेरी समता उसे कहीं;
मिली प्रिया तू उसको अलभ्य ही॥

[८]

वसन्त जाता जब है यहां से;
नहीं किसी को ध्वनि तू सुनाती।
उत्कण्ठ होके सब ढूढते हैं;
नहीं कहीं भी पर तू दिखाती॥

[९]

प्रिय-विरह-दशा में देह क्या तू छिपाती?
सु-ललित वह बानी जो नहीं तू सुनाती।
सच कह, वह बातें क्या नहीं याद आतीं?
"परभृत" अपना तू नाम भी भूल जाती?

[१०]

वसन्त के आगम में सहर्ष;
मीठे-सुरीले सुर बोलती है।
जहां तहां तू उनको सुनाके;
देती बधाई नित डोलती है॥

[११]

अवश्य तू प्रावृट में वही ध्वनि;
अहो! सुनाती रससे भरी हुई।
प्रफुल्ल देखै वन-कुञ्ज तू सभी;
वसन्त का ही भ्रम हो तुझे तभी॥

[१२]

महा रसीली रस से भरी हुई;
वानी प्रिये! तू जब बोलती है।
दशा वियोगीजन की सुदुःखदा;
कभी नहीं तू तब सोचती है॥

[१३]

अवश्य है तू अति मञ्जुभाषिनी;
अतः सभी का मन मोहती है।
परन्तु क्या तू निज कृष्ण रूप को;
भला कभी भी कुछ सोचती है?

[१४]

कवि-जन गुण तेरे नित्य गाते, तथापि
अति परिचय से तू हो न फीकी कदापि।
अब अधिक कहैं क्या? मान, काफी यही तू,
अनुपम-गुण-वाली भाग्यशाली बड़ी तू॥

कन्हैयालाल पोद्दार

रहिमन-विलास।

[पूर्व-प्रकाशित से आगे]

कहु रहीम केती रही केती गई बिहाय।
माया ममता मोह परि अंत चले पछिताय॥
अंत चले पछिताय काम एकौ नहिँ आए।
जिन हित बहु दुख सहे आजु वे भए पराए॥

अब सब तजु रे मूढ़ सरन नँदनन्दन की गहु।
राधेकृष्ण गोपाल सियापिय राम राम कहु ॥९६॥

जो रहीम करबो हुतो व्रज को यहै हवाल।
तो कत मातहिँ दुख दियो गिरिवर धरि गोपाल ॥
गिरिवरधरि गोपाल व्रजहि बूड़न सोँ राख्यो।
क्यों परवस सहि क्लेस जरत दावानल चाख्यो ॥
कालिय दहि विषहीन कियो क्यों जमुनाजल को।
क्यों व्रज राख्यो नाथ! करन ही रही यही जो ॥९७॥

जो रहीम बिधि बड़ किए को कहि दूषन काढ़ि।
चन्द दूबरो कूबरो तऊ नखत सोँ बाढ़ि ॥
तऊ नखत सोँ बाढ़ि सदा उडुराज कहावै।
बूढ़ भयो मृगराज तऊ बन मेरु कँपावै ॥
करौ लख उपहास ईरषा कछु न गिनैं ते।
तिनको घटै न बढ़ै विधाता किए बड़े जे ॥ ९८ ॥

रहिमन जाचकता-गहे बड़े छोट ह्वै जात।
नारायन हू को भयो बावन आँगुर गात ॥
बावन आँगुर गात परयो ही हाथ पसारत।
बलि के द्वारे खरे अजहुं यह कहे पुकारत ॥
सबै बड़ाई धूल माँगिबे की आई मन।
दाताकी जय सदा दबै जाचक ही रहिमन ॥९९॥

अब रहीम घर घर फिरैँ माँगि मधुकरी खाहिँ।
यारो यारी छाँड़ि द्यो अब रहीम वे नाहिँ ॥
अब रहीम वे नाहिँ रहे मुख जिनको जोहत।
कौड़ी के भए तीन द्रव्य अपुनो सब खोवत ॥
रहिए इनसोँ दूर लेहिँ नहिँ माँगि कछू अब।
अब सब बातैं गईं रहीं तब रहीं दास जब ॥१००॥

जाल परे जल जात बहि तजि मीनन को मोह।
रहिमन मछरी नीर को तऊ न छाड़ति छोह ॥
तऊ न छाड़ति छोह बिछोहा प्रान गँवावै।
अम्मृत मैं लै धरौ तऊ नहिँ ताहि सुहावै ॥
साँचे प्रेमी अटल करहिँ प्रीतम कैसहु छल।
झख न तजै जल नेह तजत झख जाल परे जल ॥१०१

धन दारा अरु सुतन मैं रहत लगाए चित्त।
क्यों रहीम खोजत नहीं गाढ़े दिन को मित्त ॥
गाढ़े दिन को मित्त चित्त मैं क्यों नहिँ राखहु।
सुद्ध प्रेममय होय प्रेम अम्मृत किन चाखहु ॥
जाके संग अनंत समय तुम करौ बिहारा।
छोड़ु न सो दिन चार हेत ये सुत धन दारा ॥१०२॥

बड़े पेट के भरन मैं है रहीम दुख बाढ़ि।
गज के मुख बिधि याहि तें दए दाँत द्वै काढ़ि ॥
दए दाँत द्वै काढ़ि प्रगट जग माहिँ दिखावत।
मनहुँ निकारे दाँत पेट की बिथा जनावत ॥
लघु संतोषी सदा सुखी बचि सब रपेट के।
सबहिन भारी परैं परे सिर बड़े पेट के ॥ १०३ ॥

ओछे काम बड़ो करैं तौ न बड़ाई होय।
ज्यों रहीम हनुमंत को गिरिधर कहै न कोय ॥
गिरिधर कहै न कोय मेरु लै लंका धाए।
इन्हैं न गिरिधर कहैं उन्हैं पूजन सब आए ॥
यहै जगत की रीति बड़न पद सबहि न पोछे।
कोऊ न पूछत काम करैं कैसहु जो ओछे ॥१०४॥

प्रीतम छबि नैनन बसी पर छबि कहाँ समाँय।
भरी सराय रहीम लखि पथिक आपु फिरि जाँय ॥
पथिक आपु फिरि जाँय टिकन को जगह न पावै।
तन मन पिय रस भरयो ज्ञान अब कहाँ समावै ॥
मन समुझावन चहत हाय! पै कहा करैं हम।
नैनन ढिग आवतै सबै ह्वै जात जु प्रीतम ॥१०५॥

गुरुता फबै रहीम कहि फबि आई है जाहि।
उर पर कुच नीके लगैं अन्त बतौरी आहि ॥
अन्त बतौरी आहि सबै सोभा बिनसावै।
जेहि हित जो कछु बन्यो तहाँ सोई छबि पावै ॥
ओछे बड़ पद लहैं तदपि झलकत हठि लघुता।
पै तिनही को फबै सदा जिन पाई गुरुता ॥१०६॥

मान सरोवर ही मिलै हंसनि मुकता भोग।
सफरी भरे रहीम सर बक बालक ही जोग ॥
बक बालक ही जोग इहाँ नहिँ काम हमारो।
जग माया के कीट करै को मान तिहारो ॥
हमैं न कछु परवाह तिहारी अरे मूढ़ नर।
कहा दिखावत लोभ बसत हम मानसरोवर ॥१०७॥

रहिमन रिस सहि तजत नहिँ बड़े प्रीति की पौरि
मूकन मारत आवई नोँद बिचारी दौरि ॥
नोँद बिचारी दौरि पुट पुरिन लागत आवै ।
जे गँभीर जन रोस बिबस नहिँ न्याय भुलावै ॥
आम वृच्छ सहि मार देत फल परम प्रेम सन ।
कटैँ कुटैँ अन देइ बड़न को गति यह रहिमन १०८

जो पुरुषारथ सोँ कहूं संपति मिलति रहीम ।
पेट लागि बैराट घर तपत रसोईं भीम ?
तपत रसोईं भीम त्यागि कुल मान बड़ाई ।
बिनु अवसर नहिँ होय कोऊ कारज ही साँई ॥
सौ सौ करौ उपाव सुफल नहिँ होय नेकु सो ।
सोई मिलै अरु तबै मिलै लिखि रही भाग जो १०९

रहिमन अपने पेट सोँ बहुत कह्योँ समुझाय ।
जौ तू अनखाए रहै तासोँ को अनखाय ॥
तो सोँ को अनखाय खाय तू तोहिँ बढ़ावै ।
तू ही अनरथ मूल जगत मैं मान घटावै ॥
तेरेहि कारन रोग लेत सब अङ्गन कोँ गहि ।
दादा! करिकै कृपा क्योँ न तू अनखाए रहि ॥११०॥

खरच बढ़यो उद्यम घट्यो नृपति निठुर मन कीन ।
कहु रहीम कैसे जिऐ थोरे जल की मीन ॥
थोरे जल की मीन भए सब भारतबासी ।
अनावृष्टि अतिवृष्टि सबै धन धान बिनासी ॥
पेट जुरै नहिँ अन्न लगत नित प्रति कर पराकर ।
अन धन खिचत विदेस रहत इत नाहिन इक खर १११

रहिमन तीन प्रकार तें हित अनहित पहिचान ।
परबस परे परोस बस परे मामिले जान ॥
परे मामिले जान जान पहिचान करावै ।
उघरैँ मन के भाव सत्रु अरु मित्र जनावै ॥
करैँ भलाई सदा अहैँ जग जे सज्जन जन ।
इनको सङ्गति किए भलाई नित प्रति रहिमन ॥११२॥

दीरघ दोहा अरथ के आखर थोरे आहिँ ।
ज्योँ रहीम नट कुण्डली सिमिटि कूदि कढ़ि जाँहिँ ॥
सिमिटि कूदि कढ़ि जाहिँ देखि अचरज जिय आवै
घट तैं सिन्धुहि बाँधि मनौं निज बस मैं लावै ॥
सार पूर्ण उपदेस पूर्ण गुन पूरन सोहा ।
कैसे कहे रहीम अरथ के दीरघ दोहा* ॥ ११३ ॥

इति ।

श्रीराधाकृष्णदास

अद्भुत योगायोग ।

[शेक्सपियर की एक आख्यायिका का भावार्थ ।]

सिसिलिया द्वीप में लियांटिस् नाम का एक राजा और हारमियोन नाम की एक रानी थी । हारमियोन रूप और गुण में अनुपम थी । दम्पति में प्रगाढ़ प्रणय था । मनोमोहिनी गुणवती भार्या के लाभ से सिसिलिया के राजा का कोई सुख अपूर्ण नहीं था । यद्यपि कोई सुख अपूर्ण नहीं था तथापि वे अपने बाल सखा और सहपाठी सुहृत् वोहिमिया के राजा पालिक्सोनीज से मिलने को इच्छा किया करते थे । परन्तु दोनों के पितृ-वियोग होने पर यथासमय दोनों ही पितृ-सिंहासन पर आरूढ़ हुए । तब से बहुत दिनों तक परस्पर में मिलना जुलना नहीं हुआ । केवल उपहार, प्रेम-पत्र तथा दूत-प्रेरण द्वारा दोनों की मित्रता अटल बनी रहो । मित्र के अनेक सादर आह्वान-अनुरोध से बाध्य होकर एक दिन वोहिमिया के राजा पालिक्सोनीज सिसिलिया राज्य में उपस्थित हुए और उनसे मिले । परम बन्धु को अपने घर आये हुए देखकर, सिसिलिया के राजा मारे आनन्द-उमङ्ग के फूले न समाये । प्राणप्रिया हारमियोन के साथ उन्होंने अपने मित्र का परिचय कराया और उन्होंने सहधर्म्मिणी से यह कह दिया कि, वे भली भाँति वोहिमिया के राजा का आदर सत्कार करें । अनन्तर दोनों मित्र मिलकर अतीत

* कविवर राधाकृष्ण ने उनहिँ पल्लवित कीन ।
सारदीय ससि सम विमल सुजस विश्व बिच लीन ॥
सं० स

की अनेक बातों की आलोचना करने लगे। सुकुमार बचपन की उन सरल प्रीतिप्रद बातों की आलोचना से दोनों ही सुखी हुए। यद्यपि हारमियोन ने इसके पहले अनेक बेर स्वामी के मुख से ये सब बातें सुनी थीं, तथापि उपस्थित वार्त्तालाप से उनके आनन्द की सीमा न रही। दोनों मित्रों ने कुछ दिन हिल मिल कर बहुत सुख के साथ बिताये। अन्त में बोहिमिया के राजा ने अपने राज्य में लौट जाने का प्रस्ताव किया। इस प्रस्ताव को सुन कर सिसिलिया के राजा दुःखित हुए, और, और भी कुछ दिन मित्र से रहने के लिए उन्होंने अनुरोध किया। मित्र के इस अनुरोध की रक्षा करने में पालिक्सीनीज़ सम्मत नहीं हुए। परन्तु जब रूपवती हारमिओन ने मधुर वचनों से सविनय आग्रह के साथ अनुरोध किया, तब बोहिमिया के राजा इस अनुरोध की उपेक्षा नहीं कर सके। और भी कुछ दिनों के लिए मित्र के यहां रहना उन्होंने स्वीकार किया। किन्तु होनहार कुछ और हो था। दुर्भाग्यवश सरला हारमियोन अपने कुग्रहों को आप ही बुला लाई। यद्यपि राजा लियांटिस अपने मित्र को सच्चरित्र तथा सुशील और हारमियोन को सती साध्वी जानते थे, तथापि उपस्थित घटना से अकस्मात् उनके हृदय में उत्कट सन्देह और विकट हिंसा का उदय हुआ। "मैंने इतना अनुरोध किया; इतना आग्रह किया; पर मेरी बातों की उपेक्षा कर, मेरी स्त्री का अनुरोध इसने माना। अवश्य ही इसके भीतर कुछ रहस्य है!"

उत्कट सन्देह के साथ विकट हिंसा का मिलन हुआ। राजा लियांटिस हिताहित ज्ञान खो बैठे। एक बार भी उन्होंने न सोचा कि, सरला हारमियोन सम्पूर्ण निर्दोष और बोहिमिया के राजा सम्पूर्ण निष्पाप हैं। पतिव्रता ने केवल स्वामी के चित्त-विनोदन के लिए ही पालिक्सीनीज़ से और भी कुछ दिन रहने का अनुरोध किया और पालिक्सीनीज़ भी सरलभाव से इस अनुरोध के स्वीकार करने में सम्मत हुए। राजा लियांटिस ने भ्रम से भी इस बात को एक बार न सोचा। जिस पर शनि की दशा आती है, उसकी बुद्धि एक दम भ्रष्ट हो जाती है। प्रतिहिंसा से पिशाच की भाँति निर्मम और कठोर हो कर राजा लियांटिस ने कैमिलो नामक एक विश्वासी कर्मचारी को अपने हृदय की दारुण अवस्था बताई और विष के प्रयोग द्वारा बोहिमिया के राजा पालिक्सीनीज़ को मार डालने की आज्ञा दी।

कैमिलो बहुत अच्छी प्रकृति का मनुष्य था। वह भली भाँति समझ गया कि, घटना निरी अमूलक है। मालिक के आदेश का पालन करना अवश्य कर्त्तव्य समझ कर भी उसने बोहिमिया के राजा को विष नहीं दिया। प्रत्युत गुप्त रीति से सिसिलिया के राजा का सङ्कल्प उसने ज्ञापन कर दिया और तुरन्त सिसिलिया राज्य से प्राण बचा कर भाग जाने का परामर्श दिया, तथा आप भी सिसिलिया राज्य को छोड़ कर उन्हींके साथ जाने में तत्पर हुआ।

पालिक्सीनीज़ बाल्यबन्धु लियांटिस के इस भयानक सङ्कल्प को सुनकर अत्यन्त भीत, चकित, स्तम्भित और विस्मित हुए; परन्तु तनिक भी सोचने का अवसर उन्हें नहीं मिला। कैमिलो की सहायता से उसी समय प्राण बचा कर वे भागे और यथा समय निर्विघ्न अपनी राजधानी में पहुँचे। कैमिलो यहाँ राजा पालिक्सीनीज़ का परम सुहृत् और प्रधान प्रियपात्र हो सुख से कालयापन करने लगा।

राजा पालिक्सीनीज़ प्राणभय से भागे, इस लिए राजा लियांटिस के क्रोध की सीमा न रही। स्त्री के व्यभिचारिणी होने की आशङ्का और भी बद्धमूल हुई। वे मारे क्रोध के काँपते हुए उसी समय रानी हारमियोन के पास गये। रानी इस समय अपने प्रिय पुत्र मैमिलस् को लिए हुई बैठी थीं। प्राणोपम पुत्र उस समय माता के साथ स्नेह पूर्ण बातें कर रहा था। अकस्मात् रुद्रमूर्त्ति में राजा लियांटिस् उसी कमरे में घुसे और पुत्र को वहाँ से

हटा कर, बड़ी क्रूरता से रानी को उन्हों ने क़ैद किया।

यद्यपि राजकुमार मेमिलस् बालक था, तथापि वह माता का स्नेह समझता था। उसी स्नेहमयी माता को पिता द्वारा असीम अपमानिता और लांछिता होते देख उसके हृदय में बड़ी वेदना हुई। तब से वह बालक अनाहार और अनिद्रा से दुबला होने लगा। सबों ने सोचा कि माता के शोक से बालक की मृत्यु हो सकती है।

राजा लियांटिस ने रानी के व्यभिचारिणी होने की आशङ्का से अत्यन्त उत्कण्ठित होकर क्लियोमिनीज़ और डाइमन नामक दो सुदक्ष कर्मचारियों को देलफास के एपेलो देव के मन्दिर में भेजा। उद्देश्य यह था कि, उक्त देवता के आदेश से विदित हो जायेगा कि, सहधर्मिणी हारमियोन सती है वा असती।

इधर अभागिनी हारमियोन ने क़ैद होने के थोड़े ही दिनों बाद एक लोचनानन्ददायिनी सुरूपा कन्या प्रसव की। इन कठिन दुर्दिनों में कन्या के उस सुन्दर मुखारविन्द को देख कर दुःखिनी जननी को कुछ धीरज हुआ। इतने दुःखों में भी उनकी आँखों से आनन्दाश्रु टपकने लगा। वे उस कन्या को स्नेहपूर्ण स्वरों से कहने लगीं—"अरी दुखिया की सन्तान, तेरी जैसी शान्त प्रकृति है, मैं भी वैसी ही निर्दोष हूँ। किन्तु हाय! भाग्यक्रम से आज मेरी यह दशा!"

दुःखिनी हारमियोन की पालिना नाम की एक प्रिय सखी थी। पालिना, ऐण्टिगोनस् नामक एक सम्भ्रान्त कर्मचारी की पत्नी थी। इस रमणी ने राजमहिषी के सब दुःखों की बात सुनी; इस लिए वह स्वयं भी अत्यन्त कष्ट के साथ दिन काटती थी। परन्तु ज्योंही उसने सुना कि, क़ैदख़ाने में रानी ने कन्या प्रसव की है, त्यों ही उसके चित्त में कुछ आशा का सञ्चार हुआ। वह फिर स्थिर न रह सकी। वह तुरन्त क़ैदख़ाने की कोठरी के सामने उपस्थित हुई। वहाँ इमिलिया नाम की रानी की दासी को देख कर उसने विनीत भाव से कहा—"इमिलिया, तुम से मेरी यह प्रार्थना है कि, तुम महारानी से जाकर पूछो कि, वे अपनी कन्या को मुझ पर विश्वास करके दे सकती हैं? निश्चय तो नहीं कहती, पर हाँ, मेरा मन ऐसा साक्षी दे रहा है कि, यदि मैं कन्या को लेकर महाराज तक पहुँच जाऊं तो कदाचित् अपत्यस्नेह से उनका हृदय पिघल सकता है, और इससे दुखिया हारमियोन के सब दुःखों की भी समाप्ति हो सकती है।"

इमिलिया ने इस बात को सुन गदगद हो कर कहा—"ठकुराइन! यह बहुत अच्छा विचार है। अभी जाकर मैं महारानी से आपके इस उत्तम प्रस्ताव को निवेदन करती हूँ। अहा, महारानी भी आज बड़े दुःख के साथ कह रही थीं कि—"मेरा ऐसा एक भी अपना नहीं है जो साहस कर मेरी कन्या को राजा के सम्मुख उपस्थित कर सके।"

पालिना ने कहा—"मेरी प्रिय सखी से यह भी कह देना कि, केवल मैं उनकी कन्या को राजा के भेंट ही नहीं करूँगी; वरं अकपट और मुक्तकण्ठ से उनके अमूलक अपवाद को दूर करने का भी यत्न करूँगी।"

इमिलिया—भगवान आपके इस निःस्वार्थ उपकार के लिए पुरस्कार देगा। राजमहिषी के साथ आपकी इतनी प्रीति है यह मैं नहीं जानती थी।

इमिलिया ने तुरन्त जाकर रानी को यह शुभ समाचार कह सुनाया। दुःखिनी रानी ने भी सहर्ष प्रिय सखी पालिना के हाथ प्राणाधिका कन्या को सौंपा।

करुणहृदया पालिना, राज कन्या को गोद में लेकर राजा के पास जाने को उद्यत हुई। परन्तु पति ऐण्टिगोनस ने पत्नी से इस प्रकार दुःसाहसिक कार्य से विरत होने के लिए अनुरोध किया और, राजा लियांटिस ऐसा करने से क्रोधित होंगे, यह भी कहा। परन्तु परोपकारिणी रमणी ने स्वामी की एक बात भी न मानी। निःशङ्क